पशु-प्रेम की कहानियाँ

द. न. मामिन-सिबिर्याक



पशु-प्रेम की कहानियाँ

लेखक
द.न. मामिन-सिबिर्याक

संपादक
हेमचन्द्र पाँडे

सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन

ISBN 978-81-7309-430-9 (PB)

•

प्रकाशक

सस्ता साहित्य मण्डल

एन-77, पहली मंजिल, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली-110001

Publisher

Sasta Sahitya Mandal

N-77, First Floor, Connaught Circus, New Delhi-110 001

फोन / Phone : 23310505, 41523565

Visit us at : www.sastasahityamandal.org

E-mail : sastasahityamandal@gmail.com

manager@sastasahityamandal.org,

शाखा : 124-ए, जीरो रोड, इलाहाबाद-211003

फोन : 0532-2400034

•

प्रथम संस्करण : 2010

पुनर्मुद्रण : 2013

मूल्य : Rs. 70/-

•

आवरण सज्जा : अंतिका आर्ट्स

मुद्रक : यूनिटेक ग्राफिक पॉइंट, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

PASHU-PREM KI KAHANIYAN (STORY)

Edited by Hemchandra Panday

Price : Rs. 70/-

प्रकाशकीय

श्रेष्ठ विश्व साहित्य का अनुवाद 'सस्ता साहित्य मंडल' द्वारा समय-समय पर किया जाता रहा है। इस क्रम में 'मंडल' द्वारा प्रकाशित प्रसिद्ध रूसी साहित्यकार टॉल्सटॉय का साहित्य हिंदी पाठकों के बीच काफी लोकप्रिय हुआ। इन पुस्तकों के दर्जनों संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

क्लासिक रूसी साहित्य की अगली कड़ी में हम प्रसिद्ध रूसी लेखक द.न. मामिन-सिबिर्याक की छह कहानियों का यह संग्रह प्रकाशित करने जा रहे हैं। ये कहानियाँ जितनी किशोर पाठकों के लिए ज्ञानवर्धक और शिक्षाप्रद हैं उतना ही प्रौढ़ पाठक के लिए भी। मनुष्य अपनी विशेषताओं के साथ महान होता है और अपनी खामियों के साथ पतित। जिस मनुष्य में मनुष्यता न हो, वह मनुष्य का ही दुश्मन बन जाता है। आम मनुष्य ने पशु, पक्षी और प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित करते हुए लाखों वर्षों की यात्रा तय की है। मनुष्य और पशुओं के पारस्परिक प्रेम-संबंधों को प्रदर्शित करनेवाली ये कहानियाँ निस्संदेह पाठकों को पसंद आएँगी।

— सचिव

अनुक्रम

प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तक में सम्मिलित कहानियाँ किशोर पाठकों के लिए लिखी गई हैं। इन कहानियों के रचनाकार हैं उन्नीसवीं शताब्दी के रूसी लेखक द्मीत्री नारकीसेविच मामिन-सिबिर्याक (1852-1912)। द.न. मामिन-सिबिर्याक का जन्म 6 नवंबर, 1952 को रूस के पेर्म प्रांत के एक पुरोहित परिवार में हुआ था। चार वर्ष तक आपने पुरोहिती की शिक्षा प्राप्त की। उसके बाद सेंट पीटर्सबर्ग जाकर पहले पशु-चिकित्सा का और फिर कानून का अध्ययन किया। परंतु विभिन्न कारणों से उनकी यह शिक्षा अधूरी रह गई। इसके बाद आप यूराल क्षेत्र में वापस आ गए। उन्होंने यूराल की खानों और वहाँ के मजदूरों के बारे में लिखना शुरू किया। इस विषय पर उन्होंने कई उपन्यास लिखे हैं। उन्हें हम 'यूराल का गोर्की' भी कह सकते हैं, यद्यपि वह गोर्की के पूर्ववर्ती थे। इसीलिए तो गोर्की ने उन्हें अपना शिक्षक माना है। गोर्की उन्हें अपना मित्र समान भी मानते थे। 1891 तक यूराल में रहने के बाद मामिन-सिबिर्याक सेंट पीटर्सबर्ग चले गए। वहीं 15 नवंबर, 1912 को उनका देहांत हुआ।

द.न. मामिन-सिबिर्याक के लेखन में उनके बाल साहित्य का स्थान सबसे विशिष्ट है। किशोरों के लिए लिखी गईं उनकी कहानियाँ हमेशा से ही बहुत लोकप्रिय रही हैं। उनकी अधिकांश कहानियों में पशु-पक्षियों के जीवन का सजीव चित्रण है। द.न. मामिन-सिबिर्याक की लिखीं बच्चों की कहानियों का एक संकलन हिंदी में सन् 1979 में प्रगति प्रकाशन (मास्को) से भी निकला था, जिसका नाम था 'सुनो कहानी, बिटिया रानी' (अनुवादक— योगेंद्र नागपाल)।

प्रस्तुत संकलन में उनकी छह अन्य कहानियाँ सम्मिलित की गई हैं। इन

कहानियों के मुख्य पात्र विभिन्न पशु-पक्षी हैं।

'शिकारी येमेल्या' कहानी में शिकारी का पोता अपने दादा से हिरनौटा (मृग-शावक) लाने को कहता है। येमेल्या पूरी तैयारी के साथ शिकार करने को निकलता तो है परंतु इस बार हिरनौटे और उसकी रक्षा करने को खड़ी हुई हिरनी को देखकर शिकारी का दिल पसीज जाता है। हिरनौटे के बदले वह एक तीतर को ले आता है जिसे भेड़िये वैसे भी शायद ही जिंदा छोड़ते। यह कहानी यही बताती है कि शिकारी के मन में भी कभी-न-कभी पशुओं के प्रति दया जाग्रत हो ही जाती है।

'पोस्तोइको' के पात्र ऐसे कुत्ते हैं जिन्हें कमेटीवाले पकड़कर ले जाते हैं। कुत्तों को बंद कर देने के बाद पाँच दिन तक कुत्तों के मालिकों का इंतजार किया जाता है जो उन्हें छुड़ाकर ले जा सकते हैं। पाँच दिन के इंतजार के बाद यदि कोई नहीं आता है तो उन कुत्तों को मार दिया जाता है। इस कहानी में बंद किए गए तरह-तरह के कुत्तों के आपसी व्यवहार को दिखाया गया है। अलग-अलग पृष्ठभूमि में कुत्तों का व्यवहार भी अलग-अलग तरह का होता है। इस कहानी से हमें यह पता चलता है कि मानव-सुलभ असमानता और ईर्ष्या जैसे अवगुण पशुओं के जीवन में भी देखे जा सकते हैं।

'प्रियौमिश' कहानी में बूढ़े शिकारी तरास का हंस के प्रति प्रेम प्रदर्शित किया गया है जो किसी शिकारी की गोली से बच निकला था परंतु उसकी हंसिनी मारी गई थी। उसके बाद से यह हंस शिकारी तरास और उसके कुत्ते के साथ मिलकर रहने लगा था। तीनों में बहुत अच्छी मित्रता हो गई थी। शिकारी का घर एक सरोवर के किनारे पर था। पाले का मौसम शुरू होने से पहले सरोवर पर प्रवासी हंसों का एक झुंड आकर रुका। तरासवाले हंस की उन हंसों के साथ मित्रता हो गई जो स्वाभाविक बात थी। जब उन हंसों ने वहाँ से प्रयाण किया तब तरासवाला हंस भी उनके साथ ही उड़ गया। स्वाभाविक ही है कि प्रत्येक जीव को अपने ही समुदाय में रहना अच्छा लगता है। तरास ने भी हंस की सेवा करके अपना कर्तव्य पूरा किया था।

'भूरी शेइका' कहानी में भी शिकारी के दया-भाव को दिखाया गया है। पाले का मौसम शुरू होने से पहले सभी पक्षी बहुत लंबे प्रवास की तैयारी में लगे हुए हैं परंतु नीलसर (बत्तख की जाति का एक पक्षी) जिसका नाम उसके

माता-पिता ने 'शेइका' रख दिया है उड़ने में असमर्थ है क्योंकि उसके पंख एक लोमड़ी ने काट दिए थे। वह शिकारी जाड़ों के मौसम में पहने जानेवाले फ़रकोट के वास्ते लोमड़ी का शिकार करने को निकलता है। लोमड़ी उसकी गोली से बच निकलती है और उसी जगह शिकारी को पंख-कटी नीलसर चिड़िया मिल जाती है। शिकारी उसे अपने घर ले आता है क्योंकि पाले के मौसम में वह जंगल में जीवित ही नहीं रह सकती थी।

'आक-बोज़ात' कहानी का घटना-स्थल किर्गीज़स्तान में है जहाँ के लोगों को घोड़ों का बहुत शौक होता है। यह एक विशेष नस्ल के घोड़े की कहानी है जिसे घुड़दौड़ में कोई हरा नहीं सकता था। घोड़े का नाम है—आक-बोज़ात। यह कहानी दंत-कथा की शैली में लिखी गई है। परिस्थितिवश जैसे ही घोड़े के मालिक बुख़ारबाइ के मन में इस अद्‌भुत घोड़े को बेचने का विचार आता है कि उसी क्षण वह घोड़ा उसका साथ छोड़कर चल देता है। परंतु दोनों का लगाव फिर भी कम नहीं होता है। दोनों एक-दूसरे के पीछे पागल हो जाते हैं और दोनों की जीवन-लीला एक साथ ही समाप्त होती है। यह कहानी भी मनुष्य और पशु के पारस्परिक प्रेम को रेखांकित करती है।

'बूढ़ा गौरा' कहानी में यह पढ़ने को मिलता है कि पालतू पक्षियों तथा गौरैया और गौरा जैसे घरेलू पक्षियों में क्या अंतर होता है। गौरैया पालतू तो नहीं होती है पर रहती वह मनुष्य के साथ ही है। वह अपना घोंसला घरों में ही बनाती है। एक बार तिलोरे (स्यर्लिङ) के लिए बनाए गए तिलोरा-घर में एक बूढ़ा गौरा आकर जम जाता है। तभी से अन्य पशु-पक्षी उस पर तरह-तरह के लांछन लगाने शुरू कर देते हैं। अंत में उसे गौरैया समेत तिलोरा-घर से बाहर निकलना पड़ता है। कड़ाके का जाड़ा शुरू हो गया था। बूढ़े गौरे को रहने को कोई ढंग की जगह नहीं मिल पाई—गौरा-गौरैया अपने बच्चों के साथ बगीचे के एक बिजूखे में रहने लगे। परंतु तेज हवा से वह बिजूखा उड़ गया। बच्चे तो तभी मर गए और गौरैया उनकी याद में बिलख-बिलख कर स्वर्ग सिधार गई। बूढ़ा गौरा भी ठंड से अकड़कर मर ही गया।

इस तरह द.न. मामिन-सिबिर्याक की ये कहानियाँ अत्यंत रोचक शैली में पशु-पक्षियों के जीवन से हमारा परिचय करवाती हैं। मनुष्य और पशुओं के बीच कैसा संबंध होना चाहिए—यह हमें इन कहानियों को पढ़कर पता चलता है।

इन कहानियों का घटना-स्थल रूस के वे क्षेत्र हैं जहाँ शीत ऋतु में इतना कड़ाके का जाड़ा पड़ता है कि वहाँ के पक्षी तो गर्म प्रदेशों की ओर चले जाते हैं। ऐसे मौसम में भेड़िये और लोमड़ी जैसे कुछ जानवर ही वहाँ रह पाते हैं। ठंडा प्रदेश होने के कारण वहाँ के लोगों को सूरज की गर्मी उतना परेशान नहीं करती है जितना हमारे देश के गर्म इलाकों में रहनेवालों को। इसलिए इन कहानियों में गर्मी के मौसम को सुहावना बताया गया है जो स्वाभाविक बात है। इन कहानियों में चूल्हे के ऊपर सोने की बात भी आई है। कड़ाके की सर्दी में जब पाला पड़ता है तब ठंड से बचने के लिए ये विशेष चूल्हे काम आते हैं। उनके ऊपर रात में सोने के लिए पर्याप्त जगह रखी जाती है। यह भी ठंडे प्रदेश की विशेषता है। इसीलिए किसी अन्य देश की कहानियों का अनुवाद पढ़ते समय हमें कुछ देर के लिए अपने आपको उसी पृष्ठभूमि में ले जाना चाहिए। तब अनुवाद पढ़ने का आनंद अधिक मिलेगा।

यह अनुवाद सम्मिलित प्रयास है। 'शिकारी मेमेल्या', 'पोस्तोइको' कहानियों का अनुवाद किया है हेमचन्द्र पाँडे ने, 'प्रियौमिश' कहानी का अनुवाद किया है अर्चना त्रिपाठी ने, 'भूरी शेइका' कहानी का अनुवाद किया है हेमचन्द्र पाँडे और नूतन पांडेय ने, 'आक-बोज़ात' कहानी का अनुवाद किया है किरण सिंह वर्मा ने तथा 'बूढ़ा गौरा' कहानी का अनुवाद किया है शैली गौड़ ने।

आशा है कि द.न. मामिन-सिबिर्याक की ये रूसी कहानियाँ हमारे किशोरों को पसंद आएँगी और प्रकृति तथा पशु-पक्षियों के प्रति उनकी रुचि बढ़ाने में सहायक सिद्ध होंगी।

1 सितंबर, 2009

हेमचन्द्र पाँडे
वाई-81, हौज़ ख़ास
नई दिल्ली-110016

शिकारी येमेल्या

बहुत दूर, यूराल पर्वत के उत्तरी भाग में, बहुत घने और घुप्प जंगलों के बीच में एक गाँव छिपा हुआ था जिसका नाम था तीच्की। गाँव में सिर्फ ग्यारह मकान थे, बल्कि दस कहना चाहिए क्योंकि ग्यारहवाँ मकान बिल्कुल अलग था, जंगल के छोर पर। गाँव के चारों ओर दँतीली दीवार की तरह देवदार की जाति के वृक्ष पंक्तिबद्ध खड़े थे। देवदार और सिलवर फ़र (बलूत) की चोटियों के उस पार कुछ पहाड़ियाँ नज़र आती थीं जिनको देखकर लगता था कि जैसे जान-बूझकर उन्होंने तीच्की को चारों तरफ से विशाल नीले-भूरे रंग के पुश्तों से घेर रखा हो। अन्य पहाड़ियों की अपेक्षा कूबड़नुमा रूचेवा पहाड़ी तीच्की के अधिक निकट पड़ती थी। उसकी चोटी एकदम ढकी हुई थी जो काले घने बादलोंवाले मौसम में ओझल हो जाती थी। इस रूचेवा पहाड़ी से बहुत सारे छोटे-बड़े चश्मे और झरने निकलते थे। उनमें से एक धारा बड़े मजे से तीच्की को बहती हुई आती थी तथा गर्मी और सर्दी के मौसम में सभी को अपना ठंडा और आँसू जैसा स्वच्छ पानी पिलाती थी।

तीच्की के मकान बिना किसी योजना के एकदम बेतरतीब बने हुए हैं। जिसकी जहाँ मर्जी हुई बना डाला। दो मकान तो नदी के ठीक ऊपर हैं, एक पहाड़ की ढलान पर है, और बाकी नदी तट पर भेड़ों की तरह बिखरे हुए हैं। तीच्की में कोई सड़क तक नहीं है। बस,

मकानों के पास से होकर टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता निकल जाता है। वैसे, तीच्की में रहनेवाले पुरुषों को सड़क की जरूरत है भी नहीं क्योंकि सड़क है तो वाहन भी होना चाहिए जबकि उनमें से किसी के भी पास एक ठेला तक नहीं है। गर्मी के दिनों में यह गाँव दलदलों और जंगल के झुरमुटों से इतनी बुरी तरह घिर जाता है कि वहाँ केवल जंगल की सँकरी पगडंडी से ही जाया जा सकता है और वह भी हमेशा नहीं। बरसात के मौसम में पहाड़ी नदियों में बहुत पानी भर जाता है, और तब तीच्की के शिकारियों को कभी-कभी तीन-तीन दिन तक पानी उतरने का इंतज़ार करना पड़ता है।

तीच्की के सभी पुरुष पक्के शिकारी हैं। गर्मी और जाड़े के मौसम में वे लोग जंगल से कभी-कभी ही बाहर आते हैं। अच्छा ही है कि जंगल दो कदम की दूरी पर ही है। अलग-अलग मौसमों में अलग-अलग तरह का शिकार मिल जाता है—जाड़ों में भालू, चितराले, भेड़िये और लोमड़ियाँ; शरद ऋतु में सफेद गिलहरी; वसंत ऋतु में जंगली बकरियाँ और गर्मियों में तरह-तरह के पक्षी। संक्षेप में कहें तो साल भर काफी मेहनत का और खतरनाक काम रहता है।

ठीक जंगल के पास जो मकान है उसमें बूढ़ा शिकारी येमेल्या और उसका पोता ग्रिशूत्का रहते हैं। येमेल्या का मकान जमीन में धँसा हुआ-सा लगता है और उसकी केवल एक खिड़की ही बाहर को खुलती है। मकान की छत तो बहुत पहले से ही सड़ चुकी है और उसकी पाइपों के अवशेष उखड़ी हुई ईंटों के रूप में ही बचे हैं। येमेल्या के मकान में न तो कोई बाड़ है, न फाटक है और न ही कोई छप्पर है। बस, रात के समय बिना रंदा किए फट्टों से बने छोटे-से बरामदे में बैठा हुआ भूखा कुत्ता लिस्को ऊँ-ऊँ करता रहता है। यह लिस्को तीच्की के सबसे अच्छे शिकारी कुत्तों में से है। हर शिकार से तीन दिन पहले लिस्को को येमेल्या भूखा रखता है ताकि वह

शिकार ढूँढने का काम अच्छी तरह से कर सके और हर तरह के जानवर का पीछा करे।

एक दिन शाम को ग्रिशूत्का ने बड़ी मुश्किल से अपने दादा से पूछा—

"दादा जी, दादा जी, क्या आजकल हिरन अपने हिरनौटों के साथ दिखाई देते हैं?"

दादा ने बान (बास्ट) की नई जूतियों को पूरा करते हुए उत्तर दिया—

"हाँ, दिखाई तो देते हैं।"

"तो एक हिरनौटा मुझे लाकर दे दोगे?"

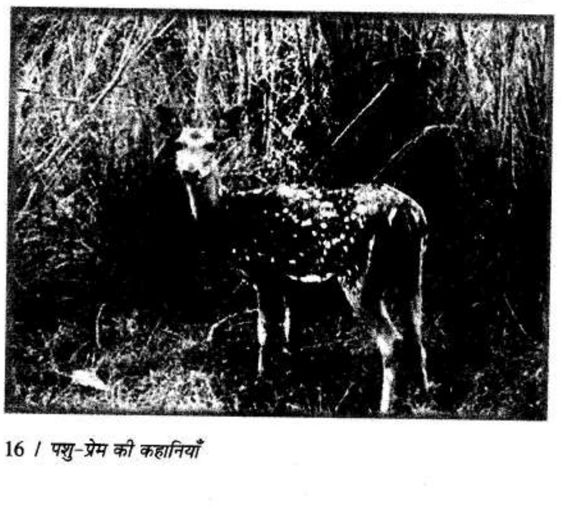
"जरा रुक जा, जरूर लाकर दूँगा।... अब गर्मी शुरू हो गई है। आजकल हिरन ततैयों से बचने के लिए अपने हिरनौटों के साथ जंगल के झुरमुटों में छिपे होते हैं। मैं वहीं से तेरे लिए एक हिरनौटा पकड़कर लाऊँगा, ग्रिशूत्का।"

बच्चे ने आगे कुछ नहीं कहा। उसने सिर्फ एक गहरी साँस ली। ग्रिशूत्का की उम्र सिर्फ छह साल की थी। लकड़ी की चौड़ी बेंच पर लेटे-लेटे उसे दूसरा महीना चल रहा था। बेंच पर बिछी हिरन की खाल उसे गर्मी प्रदान करती थी। वसंत के मौसम में जब बर्फ पिघल रही थी तब बच्चे को जुकाम हो गया था और वह अभी तक ठीक नहीं हुआ था। उसका साँवला चेहरा पीला पड़कर लटक गया था, आँखें बड़ी-बड़ी दिखाई देने लगी थीं और नाक सीधी हो गई थी। येमेल्या के सामने पोते की हालत दिन-पर-दिन ही नहीं बल्कि हर घंटे बिगड़ती जा रही थी पर येमेल्या समझ नहीं पा रहा था कि इस कष्ट में किया क्या जाए। किसी जड़ी-बूटी का रस पिलाया था, दो बार उसे हमामघर भी ले गया था। परंतु कोई फायदा नहीं हुआ था। बच्चा खाना तो ना के बराबर खा रहा था। बस, काली डबल रोटी का

एक टुकड़ा ही मुँह में डाल पाता था। वसंत ऋतु के समय का बकरी का नमक लगा हुआ मांस बचा हुआ था पर ग्रिशूत्का उसकी तरफ तो देखता तक नहीं था।

बूढ़े येमेल्या ने बान की जूतियों को अंतिम रूप से घिसते हुए मन में सोचा, 'इसकी भी क्या इच्छा हुई है—हिरनौटा चाहिए।...लाना तो पड़ेगा ही।...'

येमेल्या की उम्र सत्तर साल के लगभग थी। उसके बाल पक चुके थे, कमर झुकी हुई थी, शरीर दुबला हो गया था और हाथ लंबे थे। येमेल्या के हाथ की उँगलियाँ मुश्किल से ही मुड़ पाती थीं, जैसे कि लकड़ी की टहनियाँ हों। पर उसकी चाल अभी भी अच्छी-खासी थी और शिकार से वह खाली हाथ नहीं लौटता था। अब उस बूढ़े शिकारी की आँखें धोखा देने लग गई थीं, विशेषकर सर्दियों में क्योंकि तब बर्फ ऐसे चमकती थी जैसे चारों ओर हीरे के कण उड़ रहे हों। आँखें कमजोर पड़ जाने के कारण ही येमेल्या टूटी हुई पाइप और छत की सड़ चुकी



लकड़ी की ओर ध्यान नहीं दे पाता था, और जब बाकी लोग जंगल में होते वह प्रायः अपनी कुटिया में ही बैठा रहता था।

अब तो बूढ़े शिकारी के आराम करने के और गरम चूल्हे के ऊपर सोने के दिन थे पर उसका स्थान लेने को कोई भी तो नहीं था। फिर ग्रिशूत्का की जिम्मेवारी भी तो आ पड़ी थी, उसका ध्यान रखना तो सबसे जरूरी था।... ग्रिशूत्का के पिता की तीन साल पहले तेज बुखार से मृत्यु हो गई थी, उसकी माँ को भेड़िये खा गए थे जब जाड़ों की शाम को वह नन्हे ग्रिशूत्का के साथ गाँव से अपने घर को लौट रही थी। तब ग्रिशूत्का का बचना तो एक चमत्कार ही था। जब भेड़िये ग्रिशूत्का की माँ की टाँगों को खाने में लगे हुए थे तब उसने अपने बदन से बच्चे को ढक दिया था। इसलिए ग्रिशूत्का जिंदा बच सका था।

पोते को पालने-पोसने की जिम्मेवारी दादा की ही हो गई थी। इस बीच बीमारी भी हो गई थी। मुसीबत भी तो अकेले नहीं आती है।

2

जून महीने के आखिरी दिन थे जब तीच्की में सबसे अधिक गर्मी पड़ती है। सिर्फ बूढ़े और बच्चे ही घर पर थे। शिकारी तो बहुत पहले से ही हिरनों के शिकार के लिए जंगल में बिखर गए थे। येमेल्या के घर में बेचारा लिस्को भूख से ऐसे तड़प रहा था जैसे भेड़िया जाड़ों में तड़पता है।

गाँव की औरतें कह रही थीं—

"लगता है कि येमेल्या शिकार के लिए तैयारी कर रहा है।"

वास्तव में ही ऐसा था। थोड़ी ही देर में येमेल्या अपनी चकमक पत्थर वाली बंदूक लिए हुए अपने घर से बाहर निकला और लिस्को को खोलकर जंगल की ओर निकल पड़ा। उसने नई जूतियाँ पहन

रखी थीं, कंधे के पीछे रोटी का झोला लटका रखा था, फटा-सा काफ्तान पहन रखा था और सिर पर हिरन की खाल की कैप डाल रखी थी। येमेल्या ने टोप पहनना तो कब से छोड़ दिया था, चाहे गर्मी हो, चाहे सर्दी—वह यही हिरन की खाल की कैप पहनता था जो उसकी गंजी खोपड़ी की गर्मी और सर्दी दोनों से ही बहुत अच्छी रक्षा करती थी।

शिकार के लिए निकलते समय येमेल्या ने पोते से कहा—

''ग्रिशूत्का, मेरे आने तक ठीक हो जाना। मैं जब तक हिरनौटे को लेकर आता हूँ, तब तक बूढ़ी मालान्या तेरा ध्यान रखेगी।''

''दादा जी, हिरनौटा तो लेकर आओगे ना?''

''कह दिया कि लाऊँगा।''

''पीलावाला ना?''

''हाँ, पीलावाला।''

''ठीक है। मैं आपका इंतजार करूँगा।...बंदूक चलाते समय निशाना गलत मत लगाना।''

येमेल्या बहुत पहले से ही हिरन का शिकार करने की तैयारी कर रहा था पर पोते को अकेला छोड़कर नहीं जाना चाहता था। अब बच्चे की हालत कुछ अच्छी थी, इसलिए येमेल्या ने फैसला किया कि भाग्य आजमाकर देख लेना चाहिए। इस समय बच्चे को देखने के लिए बूढ़ी मालान्या भी उपलब्ध थी—मकान में अकेले लेटे रहने से तो यही अच्छा है।

जंगल में येमेल्या को घर जैसा ही लगता था। इस जंगल को वह अच्छी तरह कैसे नहीं जानेगा जहाँ वह अपनी बंदूक और कुत्ते के साथ जीवन भर घूमता रहा है। बूढ़े शिकारी को आसपास के सौ मील तक इस जंगल की सारी पगडंडियाँ और सारे निशान मालूम थे। इस समय, जुलाई के अंत में, यहाँ विशेष रूप से अच्छा लग रहा था—

फूलों के खिल जाने से घास की शोभा भी बढ़ गई थी, हवा में जड़ी-बूटियों की आकर्षक सुगंध व्याप्त थी, आसमान में ग्रीष्मकालीन सूर्य चमक रहा था जिसकी तेज़ रोशनी से जंगल और घास में, नरकट घास (कैरेक्स) के बीच में से कलकल बहती हुई नदी में तथा दूर दिखाई देती हुईं पहाड़ियों में चमक आ गई थी। चारों ओर का दृश्य बहुत ही अद्‌भुत और सुंदर हो गया था। येमेल्या बीच-बीच में साँस लेने को रुक जाता था और तब वह पीछे मुड़कर भी देख लेता था। जिस पगडंडी से होकर वह जा रहा था वह सर्पाकार-सी बनती हुई ऊपर पहाड़ी की ओर जा रही थी और रास्ते के शिलाखंडों और आगे को निकली हुई चट्टानों को छोड़ती जा रही थी। उस विस्तृत जंगल के कई पेड़ काट दिए गए थे। सड़क के पास नए भूर्ज वृक्ष और हनीसकल की झाड़ियाँ पड़ी हुई थीं, और वहीं पर ऐशबेरी भी अपने हरे पत्तों के साथ फैली हुई पड़ी थी। वहीं आसपास नए उग रहे देवदार के जंगल भी रास्ते में पड़ जाते थे—देवदार का यह जंगल सड़क के दोनों ओर हरे ब्रश की तरह ऊपर को उठ रहा था। देवदार के पेड़ों की



चपटी और रोएँदार टहनियाँ चारों ओर फैल रही थीं। करीब आधा पहाड़ चढ़ जाने के बाद दूर के पहाड़ और तीच्की गाँव नजर आने लगा था। पहाड़ की गहरी घाटी में गाँव लगभग छिप ही गया था और इतनी दूरी से किसानों के मकान काले धब्बों जैसे दिखाई पड़ रहे थे। सूरज की रोशनी से अपनी आँखों को ढकते हुए येमेल्या बहुत देर तक अपने मकान की ओर देखते हुए पोते के बारे में सोचता रहा।

जब येमेल्या और लिस्को पहाड़ी से नीचे उतर आए और पगडंडी से होकर देवदार के घने जंगल की ओर मुड़ गए तब येमेल्या ने लिस्को से कहा—

''लिस्को, जाकर ढूँढ।''

लिस्को के लिए आदेश को दोहराने की जरूरत नहीं थी। उसे अपना काम बखूबी आता था। एक बार अपना नुकीला मुँह मिट्टी में गड़ाकर वह घने, हरे झुरमुट में ओझल हो गया। सिर्फ एक बार कुछ ही देर के लिए पीले धब्बों वाली उसकी पीठ की झलक भर दिखाई दी थी।

शिकार शुरू हो गया था।

देवदार के विशालकाय वृक्षों की चोटियाँ आकाश की ओर ऊपर को उठी हुई थीं। उनकी नुकीली पत्तेदार टहनियाँ आपस में ऐसी उलझी हुई थीं और शिकारी के सिर के ऊपर उनसे इतनी घनी और अभेद्य मेहराब बन गई थी कि जिसमें से सूरज की किरणें तक कहीं-कहीं ही दिखाई पड़ रही थीं। सूरज का प्रकाश पीली पड़ चुकी काई और फ़र्न के चौड़े-चौड़े पत्तों पर सुनहरे धब्बे की तरह दिखाई दे रहा था। ऐसे जंगल में घास तो उगती नहीं है। कालीन की जैसी कोमल और पीली काई पर चलते हुए येमेल्या आगे बढ़ रहा था।

येमेल्या इस जंगल में कई घंटों तक चक्कर काटता रहा। लिस्को तो बिल्कुल ही गायब हो गया था। बीच में एकाध बार पाँवों के नीचे

कोई टहनी चटख जाती थी या कोई बहुरंगी कठफोड़वा ऊपर से उड़कर निकल जाता था। येमेल्या ध्यान से चारों ओर नजर दौड़ा रहा था—कहीं कोई पदचिह्न दिखाई दे जाए, हिरन के सींगों से टूटी हुई कोई टहनी शायद कहीं पर पड़ी हो, क्या पता दो हिस्सोंवाले खुर का कोई निशान काई पर रह गया हो, हो सकता है कि पहाड़ी पर उग रही घास किसी ने खा रखी हो। अँधेरा होने लगा था। येमेल्या को थकान महसूस होने लगी थी। रात कहाँ बिताई जाएगी—इस बारे में सोचना भी जरूरी था। येमेल्या ने मन में सोचा, 'दूसरे शिकारियों ने हिरनों को डराकर रख दिया है।' इतने में अचानक लिस्को की हल्की-सी आवाज सुनाई पड़ी और सामने टहनियाँ हिलने लगीं। येमेल्या देवदार के तने के सहारे खड़ा होकर प्रतीक्षा करने लगा।

यह हिरन ही था। दस सींगोंवाला असली, खूबसूरत हिरन जो जंगल के जानवरों में से सबसे अधिक शालीन है। ये देखो, शाखाओं जैसे अपने सींगों को वह पीठ तक ले आया है और हवा को सूँघते हुए ध्यान से सुन रहा है ताकि अगले ही क्षण बिजली की रफ्तार से दौड़कर हरे झुरमुट में पहुँच जाए। बूढ़े येमेल्या ने हिरन को देख तो लिया था लेकिन वह अभी उससे बहुत दूर था जहाँ बंदूक की गोली नहीं पहुँच सकती थी। लिस्को झुरमुट में ही लेटा हुआ था और गोली की प्रतीक्षा में वह साँस भी नहीं ले सकता था। उसने हिरन की आवाज सुन ली थी और उसकी गंध भी पहचान ली थी।...इतने में गोली छूटी और हिरन तीर की तरह आगे को कूदा। येमेल्या का निशाना चूक गया था और इधर लिस्को अपनी बढ़ती हुई भूख के कारण भौंकने लगा था। बेचारे कुत्ते को हिरन के भुने हुए मांस की गंध आ रही थी, भूख बढ़ाने के लिए मालिक द्वारा फेंकी जाने वाली हड्डी को भी वह देख रहा था। पर अभी तो इस सबके बदले भूखे पेट ही सोना पड़ रहा है। बहुत बेकार का किस्सा बन पड़ा है।

शाम के समय सौ साल पुराने देवदार के घने वृक्ष के नीचे बैठकर येमेल्या इस तरह विचार कर रहा था—

"इस हिरन को और घूम लेने दो। लिस्को, हमें तो हिरनौटा चाहिए। मेरी बात सुन तो रहा है ना... ?"

लिस्को ने दयनीय भाव से बस अपनी पूँछ हिला दी और अपना नुकीला मुँह आगे के पंजों के बीच में रख दिया। आज उसके भाग्य में एक सूखा-सा टुकड़ा ही आया जो येमेल्या ने उसकी ओर फेंक दिया था।

3

येमेल्या और लिस्को तीन दिन तक जंगल में भटकते रहे पर कोई परिणाम नहीं निकला। हिरन और हिरनौटा उन्हें नहीं मिल पाए। बूढ़े येमेल्या को लगने लगा था कि अब उसकी ताकत कम होती जा रही है। परंतु खाली हाथ घर लौटने का फैसला वह नहीं कर पा रहा था। लिस्को भी सुस्त और बिल्कुल कमजोर पड़ गया था यद्यपि उसने खरगोश के कुछ बच्चे तो पकड़ ही लिए थे।

तीसरी रात भी जंगल में ही आग के निकट बितानी पड़ी। पर नींद में भी येमेल्या को पीला हिरनौटा ही दिखाई दे रहा था जिसके लिए ग्रिशूत्का ने उससे कहा था। बूढ़े येमेल्या ने बहुत बार अपने शिकार का पीछा किया था, निशाना भी साधा था परंतु हर बार वह ठीक सामने से बच निकलता था। लगता था कि लिस्को को भी सपनों में हिरन ही दिखाई देते थे क्योंकि कई बार नींद में वह चीख पड़ा था और अजीब तरह से भौंकने भी लगा था।

चौथे दिन जाकर जब येमेल्या और लिस्को दोनों की ही शक्ति ने जवाब दे दिया था अचानक ही उन्हें पहाड़ के उतार पर देवदार के घने झुरमुट में हिरन और उसके छौने के चिन्ह दिखाई पड़े। सबसे

पहले लिस्को ने वह जगह ढूँढ निकाली जहाँ हिरन ने रात बिताई थी। फिर उसने घास में खोए हुए उसके चिन्हों को ढूँढ लिया।

घास में बड़े और छोटे खुरों के चिन्हों को ध्यान से देखकर येमेल्या ने अपने मन में सोचा, 'माँ हिरनी और उसका छौना है। सवेरे यहाँ से होकर गए हैं।...लिस्को, जाकर ढूँढ, प्यारे।...'

बहुत तेज धूप निकली हुई थी। बेतहाशा गर्मी पड़ रही थी। लिस्को अपनी जीभ निकालकर सभी झाड़ियों को और घास को सूँघते जा रहा था। येमेल्या के कदम बहुत मुश्किल से आगे बढ़ रहे थे। इतने में परिचित सरसराहट और शोर कानों में पड़ा।...लिस्को घास पर गिर गया था और बिल्कुल भी हिल नहीं रहा था। येमेल्या के कानों में पोते के शब्द गूँज रहे थे, 'दादा जी, मुझे हिरनौटा लाकर दो।...और हाँ, पीले रंग का होना चाहिए।' यहीं पर माँ हिरनी भी है।...बहुत ही शानदार हिरनी थी। वह जंगल की खुली जगह में खड़ी हुई थी और डरते हुए सीधे येमेल्या को देखे जा रही थी। हिरनी के ऊपर मच्छरों का झुंड भिनभिना रहा था जिसके कारण हिरनी को बार-बार अपने शरीर को झटकना पड़ रहा था।

अपनी घात से बाहर निकलते हुए येमेल्या सोच रहा था, 'नहीं, अबकी बार तू मुझे धोखा नहीं दे पाएगी।'

हिरनी को शिकारी की उपस्थिति का आभास बहुत पहले ही हो चुका था और वह हिम्मत करके उसकी चाल पर नजर रखे हुए थी।

हिरनी के निकट आते हुए येमेल्या मन में सोच रहा था, 'माँ हिरनी मेरा ध्यान बच्चे की ओर से हटा रही है।'

जब येमेल्या हिरनी पर निशाना साधने को तैयार हुआ, तब वह बड़ी सावधानी के साथ कुछ मीटर पीछे हटकर फिर से रुक गई। येमेल्या अपनी बंदूक के साथ रेंगकर आगे को बढ़ा। धीरे-धीरे आगे बढ़कर जैसे ही वह गोली चलाने को हुआ किहिरनी फिर से ओझल हो गई।

"अपने छौने से दूर तो जाएगी नहीं।" येमेल्या ने फुसफुसाकर कहा। वह कई घंटें तक धैर्यपूर्वक हिरनी की टोह में घात लगाए बैठा रहा।

मनुष्य और पशु के बीच यह संघर्ष शाम हो जाने के बाद भी चलता रहा। शिकारी को झाड़ियों में छिपे हुए अपने छौने से दूर ले जाने के उद्देश्य से हिरनी जैसे शालीन पशु ने कोई दस बार अपने जीवन को खतरे में डाला था। बूढ़े येमेल्या को अपने शिकार के साहस पर आश्चर्य भी हो रहा था और उसे क्रोध भी आ रहा था। कैसे भी हो, वह उससे बचकर तो जा नहीं सकती थी।... कितनी ही बार ऐसा हो चुका है कि स्वयं अपने आपको खतरे में डाल देने वाली हिरनी माँ पर ही उसे गोली चलानी पड़ी थी। लिस्को तो परछाईं की तरह अपने मालिक के पीछे-पीछे रेंगता हुआ आ रहा था। जब मालिक के सामने से हिरनी बिल्कुल ओझल हो गई, तब लिस्को ने बड़ी सावधानी से अपनी गरम नाक से येमेल्या का स्पर्श किया। येमेल्या ने पीछे मुड़कर देखा और धीमे से बैठ गया। उससे कोई बीस मीटर की दूरी पर हनीसकल की झाड़ी के नीचे वही पीला हिरनौटा खड़ा हुआ था जहाँ पर उसने पूरे तीन दिन काट दिए थे। बहुत ही प्यारा हिरनौटा था वह जो कुछ ही हफ्तों का रहा होगा। उसके बाल पीले थे। टाँगें बहुत ही पतली थीं। उसने सिर पीछे को मोड़ रखा था और ऊपर की टहनी को पकड़ने के प्रयास में अपनी पतली गर्दन आगे को निकाल रहा था। शिकारी ने अपनी साँस थामकर बंदूक का घोड़ा ऊपर किया और उस हिरनौटे के सिर का निशाना बनाया जो उस समय बिल्कुल अरक्षित हो गया था।

बस एक क्षण की देरी थी और वह हिरनौटा अपने मरण से पूर्व दयनीय कराह भरकर घास पर लुढ़कता हुआ दिखाई देता। पर उसी

क्षण बूढ़े शिकारी को यह ध्यान में आया कि इस हिरनौटे की माँ ने कितनी बहादुरी के साथ अपनी संतान की रक्षा करने की कोशिश की है, उसे यह बात भी याद आई कि ग्रिशूत्का की माँ ने किस तरह अपनी जान देकर अपने बच्चे को भेड़ियों से बचाया था। बूढ़े येमेल्या को अपने हृदय में भारी बोझ महसूस हुआ और उसने अपनी बंदूक नीचे रख दी। वह हिरनौटा पहले की ही तरह झाड़ी के पास घूमता रहा और पत्ते चबाता रहा। जरा-सा भी शोर होने पर वह अपने कान खड़े कर लेता। येमेल्या ने जल्दी से उठकर सीटी बजा दी—वह नन्हा पशु बिजली की रफ्तार से झाड़ियों में जाकर छिप गया।

"वाह, कैसा तेज धावक है।" येमेल्या ने कहा और सोच में पड़कर मुस्कुराने लगा। "देखने लायक था कि वह किस तरह तीर की तरह भागा।... लिस्को, हमारा हिरनौटा तो भाग ही गया है। कोई बात नहीं, उसे तो अभी बड़ा होना है।...क्या ही फुर्तीला है..."

बूढ़ा येमेल्या बहुत देर तक एक ही जगह पर खड़ा होकर उस धावक को याद कर-करके मुस्कुराता रहा।

अगले दिन येमेल्या अपने घर वापस आ गया।

"दादा जी, हिरनौटा लेकर आए हो ना?" ग्रिशूत्का ने दरवाजा खोलते ही पूछा—वह इतने दिन तक अधीरता से दादा की प्रतीक्षा ही कर रहा था।

"नहीं, ग्रिशूत्का,... मुझे वह दिखाई तो दिया था।..."

"पीलावाला?"

"हाँ, पीलावाला। उसका मुँह काला था। झाड़ी के नीचे खड़ा हुआ पत्ते चबा रहा था।...मैंने निशाना बनाया था।"

"क्या निशाना नहीं लगा?"

"नहीं, ग्रिशूत्का, नहीं। मुझे उस नन्हे पशु पर दया आ गई।... उसकी माँ पर दया आ गई।...जैसे ही मैंने सीटी बजाई, हिरनौटा

झुरमुट में जाकर गायब हो गया। देखने लायक था। भाग ही गया, बदमाश कहीं का।..."

दादा ने अपने पोते को विस्तार से बताया कि किस तरह जंगल में तीन दिन उन्होंने हिरनौटे को ढूँढने में लगाए थे और किस तरह वह उनके पास से निकल कर भाग गया। ग्रिशूत्का सारी कहानी ध्यान से सुनते हुए दादा के साथ-साथ हँसते भी जा रहा था। अपनी कहानी पूरी करके अंत में येमेल्या ने कहा—

"ग्रिशूत्का, मैं तेरे वास्ते बड़ा तीतर लेकर आया हूँ। इसे भेड़िये वैसे भी खा ही जाते।"

तीतर के पंख उतारकर पकाने के लिए उसे भगौने में डाल दिया गया। बीमार बच्चे ने तीतर का सूप बड़े चाव से लिया और सोने से पहले अपने दादा से बार-बार एक ही सवाल पूछता रहा—

"दादा जी, हिरनौटा भाग गया था क्या?"

"हाँ, भाग गया था, ग्रिशूत्का।"

"पीले रंग का था क्या?"

"सारा-का-सारा पीला था, सिर्फ उसका मुँह और खुर काले थे।"

हिरनौटे की कहानी सुनते-सुनते ग्रिशूत्का को नींद आ गई थी। सारी रात सपने में उसे वह नन्हा हिरनौटा ही दिखाई देता रहा जो जंगल में अपनी माँ के साथ अठखेलियाँ कर रहा होगा। बूढ़ा येमेल्या चूल्हे के ऊपर सोया हुआ था और सपने में वह भी मुस्कुरा रहा था।

पोस्तोइको

जैसे ही चौकीदार ने फाटक खोला, पोस्तोइको असाधारण रफ्तार से उसके पास से होकर बाहर निकल गया। यह सवेरे की घटना थी। पोस्तोइको को पड़ोस के घरवाले पौइंटर कुत्ते से झगड़ना था—उसे इसी समय बाहर घूमने के लिए छोड़ा जाता था।

"अरे गँवार, तू फिर आ गया। मैं अभी तेरी ऐसी की तैसी करता हूँ।" अपने लंबे सफेद दाँत दिखाते हुए पौइंटर गुर्राया और अपनी डंडी जैसी पूँछ को सीधा कर दिया।

पोस्तोइको ने छल्ले की तरह मुड़ी हुई अपनी घनी पूँछ और भी ऊपर को कर दी और गुस्से में आकर दुश्मन पर धावा बोल दिया। दोनों कुत्ते हर रोज़ इसी समय आकर मिलते थे और हर बार पागलपन की हद तक लड़ते रहते थे। शिकारी कुत्ते को वह झबरीला घरेलू कुत्ता एक नज़र नहीं भाता था। और वह घरेलू कुत्ता ऐसा था कि अपने सफ़ेद दाँत बाहर निकालकर शिकारी कुत्ते महाशय की इतनी अच्छी देखभाल की हुई खाल पर उन्हें गढ़ा देने को बेचैन रहता था। पौइंटर कुत्ते का नाम आर्गुस था। एक बार वह कुत्तों की प्रदर्शनी में भी जा चुका था जहाँ पर एक-से-एक बढ़िया नस्ल के और भी बहुत-से अच्छी देखभाल किए हुए कुत्ते आए हुए थे। तो, ये दोनों दुश्मन धीरे-धीरे एक-दूसरे की ओर बढ़ रहे थे, उनके रोएँ उठ गए थे, दोनों अपने-अपने दाँतों को निपोर रहे थे और एक-दूसरे पर

झपटने को तैयार हो ही रहे थे कि अचानक एक लंबी रस्सी हवा में लहराती हुई आई और उसने आर्गुस को लपेट लिया। आर्गुस दर्द के मारे कराहने लगा और फिर बैठ ही गया। उसने अपनी आँखें तक बंद कर लीं। रस्सियाँ लिए पीछे-पीछे आ रहे लोगों से अपने को बचाते हुए पोस्तोइको पूरी रफ्तार से सड़क पर भागता चला गया। वह कहीं किसी फाटक के अंदर घुस जाना चाहता था परंतु सब-के-सब बंद पड़े थे। सामने से चौकीदार निकल आए थे जिन्होंने पोस्तोइको का रास्ता ही रोक दिया था। फिर से रस्सी लहराती हुई आई और उसने पोस्तोइको की गर्दन को अपनी लपेट में ले लिया।

''फँस गया, बेटे।'' एक लम्बू ने कहा। वह उस बेचारे कुत्ते को गाड़ी में डालने के लिए खींचे जा रहा था।

शुरू में तो पोस्तोइको ने पूरा जोर लगाकर प्रतिरोध किया, पर वह मुई रस्सी उसकी गर्दन को इतनी बुरी तरह दबाए जा रही थी कि उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा गया था। उसे यह भी याद नहीं कि कब उसे धकेलकर गाड़ी में डाल दिया गया। वहाँ दसेक तरह-तरह के कुत्ते पहले से ही थे जो बेचारे कोनों में दुबके पड़े थे—उनमें से दो थे पग-श्वान, एक था छुटका खिलौना, एक था सेटर, एक था न्यूफ़ाउंडलैंड और बाकी थे आवारा कुत्ते। एकदम दुबले-पतले और निरीह। उन्हीं में आर्गुस भी शामिल हो गया और डर के मारे सबसे दूरवाले कोने में दुबककर बैठ गया।

बाकी आवारा कुत्तों से अपने आपको दूर रखते हुए छुटका खिलौना बोला—

''हमारे साथ ठीक से तो पेश आए होते। जनरल साहिबा को पता चलेगा तो ऐसा मजा चखाएगी कि...।''

यह घृणास्पद कुत्ता कुछ ज्यादा ही अकड़ दिखा रहा था। पोस्तोइको उसे आसानी से मजा चखा सकता था परंतु ऐसा करने का मौका नहीं

था। ये पकड़े हुए कुत्ते बड़ी उलझन में थे और कुछ समय के लिए तो उन्हें अपनी कुत्तों वाली आदतें भी भूल गई थीं। उनमें से सबसे शांत व्यवहार न्यूफ़ाउंडलैंड का था। उसने किसी की ओर भी ध्यान नहीं दिया, ठीक बीच में लेट गया था और उसने आँखें इस तरह भींच ली थीं जैसे कि कोई वी.आई.पी हो।

छुटके खिलौने ने अपनी घनी, सफ़ेद दुम को हिलाते हुए पूछा—

''न्यूफ़ाउंडलैंड महोदय, आपका क्या विचार है? यहाँ तो बहुत गंदगी है, ऐसे में रहने की मेरी आदत नहीं है।... कैसे लोगों से यहाँ वास्ता पड़ा है!... छि: !... मुझे तो गलती से पकड़ा गया है, और मैं जल्दी ही छूट भी जाऊँगा। यहाँ अच्छा भी नहीं लग रहा है। बदबू भी बहुत आ रही है।''

न्यूफ़ाउंडलैंड ने अपनी एक आँख आधी खोली, और छुटके की ओर उपेक्षा के भाव से देखकर और भी अधिक अकड़ के साथ ऊँघने लगा।

दो पग-श्वानों में से एक ने बड़े आराम से अपने दाँत दिखाते हुए कहा—

''छुटके जी, आपका कहना बिल्कुल सही है। कहीं कोई भ्रम हो गया है।... हम सब यहाँ पर गलती से आ पहुँचे हैं।''

उनकी बातें सुनकर आर्गुस बोला जिसका डर अब तक जा चुका था—

''मुझे तो लगता है कि हमें किसी प्रदर्शनी में भेजा जाएगा। मैं एक बार ऐसी नुमायश में रह चुका हूँ, और इसलिए मैं कह सकता हूँ कि वहाँ हालात बुरे नहीं होते हैं। सबसे अच्छी बात तो यह है कि वहाँ खाना बढ़िया मिलता है।''

आवारा कुत्तों में से एक बुरी तरह हँस दिया। क्या बताया जाए— किसी अच्छी प्रदर्शनी में ले जाएँगे। वह पहले भी कुत्तों की गाड़ी में

रह चुका था जहाँ से वह संयोग से ही निकल भागा था। उसने अपने साथियों को अपना अनुभव सुनाया।

''हम सबको कुत्तों के शरण-स्थल में ले जाकर लटका दिया जाएगा। वहाँ क्या होता है—मैंने देख रखा है। एक बहुत लंबा कमरा बना हुआ है जिसमें रस्सियाँ लटकी रहती हैं।''

छुटके ने चिंचियाते हुए कहा—

''चुप भी हो जाओ। मुझे ऐसी बातें सुनना अच्छा नहीं लग रहा है। ओफ़!...''

अपनी आँखें खोलकर न्यूफ़ाउंडलैंड ने आश्चर्य प्रकट करते हुए पूछा—

''रस्सियों से लटकाएँगे क्या? मैं यह जानना चाहूँगा कि ऐसा कौन बंदा है जो मेरे पास तक आने की हिम्मत कर सकेगा?''

रस्सी जैसे भयानक शब्द को सुनकर तो बेचारा पोस्तोइको पूरा-का-पूरा काँप उठा। उसे तो ऐसा महसूस तक होने लग गया जैसे किउसकी गर्दन दबोची जा रही हो। पर किस बात के लिए लटकाएँगे? क्या इस बात पर कि वह आर्गुस के साथ झगड़ना चाहता था?...इस समय तो पोस्तोइको और आर्गुस एक-दूसरे की ओर देखने से बच रहे थे, जैसे कि कभी मिले ही ना हों। उन्हें एक तरफ़ तो पछतावा हो रहा था, और, दूसरी ओर, पुरानी दुश्मनी को जारी रखने का अभी समय ही कहाँ था?

पोस्तोइको ने मन-ही-मन सोचा, 'आर्गुस को लटका देते तो अच्छा रहता। कम-से-कम मुझे तो छोड़ देते।'

बेशक, इस तरह से सोचना अच्छी बात तो नहीं थी। पर जब बुरी हालत में पड़े हों तो हर किसी को सबसे पहले अपनी ही चिंता होती है। कुत्तों को लिए गाड़ी आगे बढ़ चुकी थी। लोहे की जालीवाला उसका दरवाजा सिर्फ तब खुलता था जब किसी नए

'शिकार' को अंदर डालना होता था। आवारा कुत्तों का आज का शिकार विशेष रूप से सफल रहा था। इस पूरे काम को नियंत्रित कर रहे लंबू ने फैसला किया कि आज के लिए इतना काफ़ी है। उसने गाड़ीवान से कहा—

''अब घर को चल दे।''

क्या कहा जाए—घर की ओर की यात्रा बहुत सुखद थी। ...सभी कुत्तों की हालत बहुत बुरी हो रही थी, सिर्फ पग-श्वान गुर्राने लगा था। अरे, ये क्या हो रहा है? ...गाड़ी बहुत धीमे चल रही है और भारी भी हो रही है, जैसे कि दुनिया के दूसरे छोर की ओर जा रही हो। कुत्ते बहुत सारे थे और चाहे-अनचाहे एक-दूसरे से टकरा जाते थे जब गाड़ी ऊँची-नीची जगहों पर से जाते हुए हिलने लगती थी। जैसे-जैसे गाड़ी आगे बढ़ती जा रही थी, वैसे-वैसे ऐसे गड्ढे भी बढ़ते जा रहे थे। इस धक्का-मुक्की में पोस्तोइको को पता तक नहीं चला कि कब वह और आर्गुस पास-पास आ गए हैं, बल्कि उसने अपने मुँह से आर्गुस को बगल से धकेल तक दिया था। तब आर्गुस ने कहा—

''क्षमा कीजिए, अपने मुँह को आप मुझसे चुभोए जा रहे हैं।...'' आर्गुस अच्छा प्रशिक्षित कुत्ता था और उसके बोलने में विषाक्त उत्सुकता दिखाई दे रही थी। पर जब उसने अपने दोस्त को पहचान लिया तब धीमे से इतना और जोड़ दिया, ''बहुत बुरी बात हुई है, पोस्तोइको।...कम-से-कम मेरी तो रस्सी पर लटकने की कोई इच्छा नहीं है।...वैसे भी मेरा मालिक मुझे बचा लेगा।''

पोस्तोइको निराश होकर चुप बैठ गया। उसका कोई मालिक नहीं था, वह, बस, ऐसे ही रह रहा था, बिना किसी मालिक के। सिर्फ एक महीना पहले उसे गाँव से शहर लाया गया था।

2

आवारा कुत्तों की शरण-स्थली नगर के छोर पर स्थित थी जहाँ न कोई सड़कें थीं, न बिजली के खंबे, बस, छोटे-छोटे मकान थे जो जमीन के अंदर ऐसे धँसे हुए थे जैसे कि सड़े हुए दाँत हों। कुत्तों की इस शरण-स्थली में दो कोठरियाँ थीं जिनमें से एक में तो कुत्तों को रखा जाता था और दूसरे में उन्हें टँगा जाता था। जब कुत्ता-गाड़ी अहाते में प्रविष्ठ हुई तब पहली कोठरी में से ऐसी दयनीय कराहें और भौंकने की आवाजें आईं कि पोस्तोइको का तो दिल ही बैठ गया। लगता था कि उसका अंत आ गया है।

दाँतों में छोटी पाइप दबाए निरीक्षक बाहर निकलकर आया। लंबू ने उससे कहा—

''आज गाड़ी पूरी भरी हुई है।''

निरीक्षक ने कुत्ता-गाड़ी को निर्लिप्त भाव से देखते हुए आदेश दिया—

''इन्हें नस्लों के अनुसार अलग-अलग कर दो।''

तभी छुटके कुत्ते ने अपनी तीखी आवाज में कहा—

''निरीक्षक महोदय, कृपा करके मुझे छोड़ दीजिए। आपकी इस घटिया-सी गाड़ी के अंदर बैठे-बैठे मैं तंग आ गया हूँ।''

पर निरीक्षक ने उसकी ओर देखा तक नहीं।

छुटका बड़बड़ाकर बोला—

''कैसा अज्ञानी है!''

जब कोठरी का दरवाजा खोला गया तब भौंकने, चीखने और किंकियाने की ऐसी आवाजें निकलने लगीं कि जिन्हें सुनकर कठोर-से-कठोर हृदय तक पिघल जाता।

लंबू ने एक-एक करके गर्दन से पकड़-पकड़ कर कुत्तों को बाहर निकाला और कोठरी में डाल दिया। नवागंतुकों के आने से कुछ देर

के लिए वहाँ का तूफ़ान थम गया। सबसे बाद में बारी आई न्यूफाउंडलैंड की जिसे एक अलग जगह रखा गया। पहले से बंद कुत्तों ने नवागंतुकों का बहुत खुशी से स्वागत किया, जैसे कि वे उनके खास मेहमान हों। उन्हें सूँघकर देखा, उन्हें चाटा और अपने सगों की तरह उन्हें पुचकारा। पोस्तोइको को सड़क के बेघर, आवारा कुत्तों के साथ रखा गया जिन्होंने उसके प्रति बहुत अधिक सहानुभूति दिखाई।

''तू कैसे फँस गया, भाई?...'' झबरीले बार्बोस ने उससे पूछा।

''बस, ऐसे ही फँस गया।...मैं तो एक बाँके-छैले कुत्ते से झगड़ने को था कि हम दोनों को ही पकड़ लिया गया। मैं सड़क के रास्ते भाग निकल रहा था कि सामने से चौकीदारों ने रास्ता रोक दिया। थोड़े में कहूँ तो बहुत बुरा हुआ।... पर मुझे एक बात की जरूर तसल्ली है कि वह छैला भी पकड़ा ही गया। उसे शिकारी कुत्तों के साथ रखा गया है।...लंबी-लंबी टाँगें हैं उसकी और पूँछ लाठी जैसी है।''

''गले में पट्टा भी होगा?''

''हाँ, पट्टा भी है।... ये बाँके-छैले कुत्ते अपने पट्टों की अकड़ दिखाते हैं।''

''हूँ! उसका मालिक उसे छुड़ा ले जाएगा।''

कुछ मिनटों में पोस्तोइको को इस श्वान-गृह के सारे कायदे-कानून समझ में आ गए। पकड़कर लाए गए कुत्तों को अलग-अलग पिंजड़ों में रखा गया था, जहाँ उन्हें पाँच दिन बिताने थे। यदि इस बीच किसी कुत्ते का मालिक कुत्ते को छुड़ाने नहीं आता तो उसे दूसरी कोठड़ी में ले जाकर रस्सी पर लटका दिया जाता। पोस्तोइको बहुत बुरी तरह निराश हो गया था कि अब जिंदा रहने के सिर्फ पाँच दिन बचे हैं।...बड़ी भयानक बात है।...यह सब इसलिए हो गया कि इस घृणित छैले के साथ झगड़ा करने को बाहर निकल आया था। हाँ, दोनों को एक साथ ही तो लटकाया जाएगा क्योंकि दोनों की समय-

सीमा समान ही है। यह कोई अच्छी सांत्वना तो नहीं थी, फिर भी सांत्वना तो थी ही।

बार्बोस ने सूचित करते हुए कहा—

''इस पीले कुत्ते का बस एक दिन बचा है जिंदा रहने का। और यह बहुरंगी कुत्ता तो बस आज ही...।''

''और तेरा कितना समय बाकी है?''

''मुझे तो अभी काफ़ी दिन जीना है—पूरे तीन दिन हैं। एक-एक घंटा इंतजार में रहता हूँ किकोई मुझे छुड़ाने को कब आएगा। यहाँ बैठे-बैठे मन काफ़ी उकता गया है। अच्छा, कुछ खाने की इच्छा तो नहीं है? यहाँ बर्तन में कुछ खुराक पड़ी हुई है।... है तो बहुत बकवास, पर यहाँ तो घटिया-से-घटिया चीज भी खानी पड़ रही है।''

पोस्तोइको की हालत ऐसी थी कि वह भोजन के बारे में तो सोच तक नहीं सकता था। अभी तो लटकाए जाने का डर बैठा हुआ है, ऐसे में भोजन की सोच ही कहाँ सकते हैं? उसने डरते-डरते छोटे बहुरंगी कुत्ते की ओर देखा जिसकी बारी बस आ ही चुकी थी। कदमों की आहट सुनकर और प्रवेश-द्वार के खुलते ही वह बेचारा काँपने लगा था और उसने अपनी आँखें भींच ली थीं। लगता है किउसी को लेने आ रहे हैं।

''कुछ खा तो ले।'' बार्बोस ने उसे सलाह दी और आगे बोला, ''यहाँ पर बैठे रहना कितना ऊबाऊ है।... इन छबीले शिकारी कुत्तों को तो देखो—मारे उदासी के तीन दिनों से कुछ नहीं खाया है। हम तो रखवाली करनेवाले साधारण कुत्ते हैं—हम औपचारिकता को लेकर यूँ ही बैठे नहीं रहेंगे। भूख तो भूख ही है।...तू गाँव का रहनेवाला है क्या?''

पोस्तोइको ने उसे अपनी कहानी सुनाई। वह इस मनहूस शहर से दूर, गाँव में पैदा हुआ था जहाँ न चौकीदार होते हैं, न ऐसे बड़े-बड़े पक्के अहाते होते हैं, न कुत्ता-घर होते हैं, न कुत्ता-गाड़ी होती है, वहाँ सब कुछ सीधा-सादा है—गाँव के पार नदी है, नदी पार करके खेत हैं, खेतों को पार करके जंगल शुरू हो जाता है। इस साल गर्मियों में शहर से आकर कुछ बड़े लोग ग्रीष्म-आवास में ठहरे थे। मेरा दुर्भाग्य कहना चाहिए कि तभी मेरा उनसे परिचय हुआ, बल्कि यों कहना चाहिए किउन्होंने ही मुझसे परिचय किया। उनके साथ एक घुँघराले बालोंवाला बच्चा था जिसका नाम था बोर्या। गाँव के कुत्ते को देख कर बोर्या हँसने लगा। कैसा विचित्र है यह कुत्ता—इसके बाल लटों की तरह हैं, पूँछ एकदम मुड़ी हुई है, बालों का रंग ऐसा मटमैला है मानो कि अभी-अभी डबरे से निकलकर आया हो। नाम भी तो वैसा ही विचित्र है— पोस्तोइको। ''पोस्तोइको, इधर आ।''—शुरू में तो शहरी बच्चे के प्रति पोस्तोइको के मन में अविश्वास था। परंतु बाद में बछड़े की हड्डी के लालच में आ गया। इसी हड्डी ने उसे डुबोकर रख दिया।...अब वह खुद ही टुकड़े की आस में उन लोगों के पास आने लगा। बोर्या को उसके साथ खेलना अच्छा लगता था, और वे दोनों दिन भर जंगल, खेत और नदी पर जाकर गायब ही हो जाते थे। आह, कैसा बढ़िया था वह समय! पर वह बहुत ही जल्दी निकल गया। पोस्तोइको की उन लोगों के साथ इतनी अच्छी दोस्ती हो गई थी कि वह बेझिझक होकर उनके कमरों में पहुँच जाता था, उनके कमरों के चक्कर लगाता था और वहाँ उसे अपना घर जैसा लगने लगा था। मुख्य बात तो यह थी कि उनके वहाँ खाना बहुत बढ़िया मिलता था—इतना ज्यादा खाया जाता था कि साँस तक अटकने लगती थी। शरद ऋतु शुरू होने पर उन लोगों ने शहर वापस जाने की तैयारी करनी शुरू कर दी। छोटा बच्चा बोर्या तो पोस्तोइको को अपने साथ ले जाने पर अड़ा हुआ था यद्यपि उसे बहुत समझाने की कोशिश की गई कि यह झंझट मत पाले। इस तरह पोस्तोइको बड़े शहर में जा पहुँचा जहाँ बोर्या उसे लगभग भूल ही गया। पोस्तोइको अहाते में रहने लगा और वहाँ

उसके दिन जैसे-तैसे कटने लगे। केवल बावर्चिन अंद्रेयेव्ना को ही उसका ध्यान रहता था, वही उसे खिलाती थी और प्यार करती थी—दोनों एक ही गाँव से थे। खैर, पोस्तोइको को शीघ्र ही शहरी चहल-पहल की आदत पड़ गई, और उसे शहर के सुशील कुत्तों पर अपनी गँवारू चालें दिखाने में मजा आने लगा था।

''क्यों नहीं, शहर में भी तो रहा जा सकता है।'' बार्बोस ने सहमति प्रकट करते हुए कहा, ''मुझे केवल एक बात समझ में नहीं आती है कि इन पग-श्वानों और छुटके कुत्तों के प्रति इतना स्नेह क्यों दिखाया जाता है? इनकी ओर देखने में कभी-कभी शर्म तक आने लगती है।...ये हैं किस काम के? शिकारी कुत्तों और न्यूफाउंडलैंडों की बात अलग है। अगर ये कुत्ते अकड़ दिखाएँ भी तो हैं तो असली कुत्ते ना, पग-श्वान भी कोई कुत्ता है। छि: !...यहाँ भी इनके साथ विशेष व्यवहार किया जाता है—इन्हें रस्सी पर इनकी बारी से नहीं लटकाया जाता है, इनके लिए एक हफ्ता और रुका जाता है कि शायद कोई लेने आ जा। बेवकूफ तो भरे हुए हैं, कोई आ ही जाता है।...यह तो सरासर अन्याय है।... अगर मुझे यहाँ से निकलने का मौका मिल जाए तो मैं इन पग-श्वानों को मजा चखा दूँ।''

बार्बोस अभी अपनी भड़ास निकाल ही पाया था कि एक सेविका को साथ लिए निरीक्षक वहाँ प्रकट हुआ।

''क्या आपका कुत्ता आज खोया है?'' निरीक्षक ने उससे पूछा।

''हाँ।... बहुत छुटका-सा, सफेद रंग का है।...नाम है बौबी।'' सेविका ने समझाते हुए कहा।

''मैं यहाँ हूँ।'' छुटके ने दयनीय भाव से हल्की-सी आवाज निकाली।

सेविका की खुशी का ठिकाना न रहा—

''आह, हे भगवान, जनरल साहिबा तो मुझे नौकरी से ही निकालनेवाली थीं, अगर यह नहीं मिला होता तो।''

सेविका ने भुगतान करके छुटके कुत्ते को अपनी गोद में ले लिया और वहाँ से बाहर निकल गई।

बार्बोस ने गुस्से में भरकर कहा—

''देखा? हमेशा ऐसा ही होता है—असली कुत्ते की कोई पूछ नहीं है, बेकार की चीज को सँभालकर उसकी देखभाल की जाती है।''

3

कैद में बंद कुत्तों के दिन बहुत बुरे कट रहे थे।... रात को भी उन्हें चैन नहीं मिलता था। कुत्ते सपनों में बड़बड़ाते रहते थे, भौंकते थे और अजीब-अजीब-सी आवाजें निकालते थे। चिंता तो दोपहर की रोशनी से ही शुरू हो जाती थी जिसकी सुनहरी किरणें और कभी-कभी प्रकाश के बड़े-बड़े धब्बे कोठरी के छिद्रों में से अंदर आते थे। छोटे कुत्ते औरों से पहले जग जाते थे और बाहर से आनेवाले छोटे-से-छोटे शोर को बेचैनी से कान लगाकर सुनते थे। फिर शिकारी कुत्ते उनके साथ आकर मिल जाते थे। न्यूफाउंडलैंड का मोटी आवाज में भौंकना सबसे बाद में सुनाई देता था जैसे किसी ने एक पौंड वजन का लोहे का भार किसी खाली ड्रम में धड़ाम से डाल दिया हो। चेतावनी का संकेत अक्सर ही झूठा निकलता था।

''आ गए, आ गए।''

चीखें-चिल्लाहटें बढ़ती ही जाती थीं जिनसे जंगली संगीत जैसा निकलता था। कुछ देर बाद जब कोई भी आता नहीं दिखाई देता था तब सब कुछ एक ही क्षण में शांत भी हो जाता था।

इतने में कदमों की आहट सुनाई दी।...सब चौकन्ने हो गए। कुत्तों ने अपनी श्रवण-क्षमता से पहचानने की कोशिश की कि ये किसके कदम हो सकते हैं। किंकियाहट शुरू हो गई। जब दरवाजा खुला और कोठरी में दिन की तेज रोशनी प्रविष्ट हुई तब एक ही क्षण में सब

कुछ शांत हो गया। लकड़ी के जंगलों के पास कुत्तों के सिर नज़र आ रहे थे जो बड़ी बेचैनी से अपने-अपने मालिकों को खोज रहे थे। इतने में निरीक्षक आता दिखाई दिया जिसके हाथ में हमेशा डंडी रहती थी, उसके साथ चला आ रहा था लंबू जो रस्सी से कुत्तों को पकड़ने में माहिर था—कुत्तों को लटकाने का काम भी वही करता था। उनके पीछे-पीछे चले आ रहे थे आगंतुक जो अपने-अपने कुत्तों की खोज में निकले हुए थे। किसी का मालिक आ ही गया है।...किसे मुक्ति मिलेगी?... अपने मालिक को देखकर न्यूफाउंडलैंड ने तो जंगला, बस, तोड़ ही डाला था। वह भारी-भरकम मशीन, ऐसे कूदी कि उसके भौंकने से कोठड़ी की बाकी सब आवाजें दब ही गईं।

"क्यों, भाई, अच्छा नहीं लगा क्या? अब आगे से समझदारी से काम लेना।"

कमरे में बंद बाकी कुत्ते किंकियाते हुए और एक-दूसरे को धकेलते हुए जंगले के पास आ गए थे। कुछ तो पिछले पंजों पर खड़े हो गए थे। परंतु आगंतुक तो केवल अपने-अपने कुत्तों को लेकर वापस चले गए थे। निरीक्षक ने कोठरी के सभी भागों का चक्कर लगाया और बस इतना कहा—

"जिनकी बारी आ गई है उन्हें लेकर लटका दो।"

वह लंबू कुत्तों को इस तरह अलग करने लगा जैसे किवह दुनिया भर के सारे कुत्तों को लटकाने के लिए तैयार हो। कोठरी के जिस भाग में पोस्तोइको बैठा हुआ था वहाँ से बहुरंगी कुत्ते को बाहर निकाला गया था। वह तो प्रतीक्षा करते-करते इतना थक चुका था कि आज्ञापूर्वक अपने आततायी के पीछे-पीछे चल दिया। इस भयानक यातना और अनिश्चितता से तो मौत ही अच्छी है। उसके बाद ले गए पीले कुत्ते को और बूढ़े शिकारी सेटर को।

इस तरह तीन लंबे, अंतहीन दिन पूरे हुए। अब बार्बोस की बारी आने वाली थी जो, स्पष्ट ही, शांत पड़ गया था।

"अगर आज मुझे छुड़ाने कोई नहीं आया..." सवेरे-सवेरे उसने ऐसा कहा और आगे बोला, "नहीं, ऐसा हो ही नहीं सकता।...मुझे क्यों कर लटकाया जाए?... मैंने निष्ठा और सच्चाई के साथ सेवा की है।"

पोस्तोइको ने उसे सांत्वना देते हुए कहा—

"जरूर कोई आएगा। बढ़िया कुत्ते को ऐसी हालत में भला कैसे छोड़ा जा सकता है?"

इस बार्बोस को देखकर बड़ी दया आती थी जब दरवाजा खुलने पर वह देखता था कि उसका मालिक इस बार भी नहीं आया है। "अब तो मेरे जीवित रहने के कुछ ही घंटे बचे हैं।" उसकी नेक आँखें निराश होकर यही कहे जा रही थीं, "बस कुछ ही घंटे तो बचे हैं।..." कितनी जल्दी समय बीत गया है कि कुछ ही घंटे बाकी रह गए हैं।

"ये रहा!" एक दिन बार्बोस चिल्ला पड़ा और तेजी से जंगले की तरफ दौड़ा।

पर उससे भारी गलती हो गई थी। किसी और कुत्ते को ले जाने के लिए कोई आया था। बुरी तरह निराश बार्बोस एक कोने में जा बैठा और दयनीय भाव से कराहने लगा। उसका वह दयनीय हालत ऐसी थी जिसे केवल यहाँ, इस भयानक चारदीवारी के अंदर, रहनेवाले ही जान सकते थे।

"इसे ले जाओ।" बार्बोस की ओर इशारा करते हुए निरीक्षक ने कहा।

बार्बोस को छुड़ा लिया गया। पोस्तोइको के सारे शरीर में सिहरन दौड़ गई—बस, दो दिन की बात है, उसे भी छुड़ा लिया जाएगा। बात यह है कि उसका कोई असली मालिक तो है नहीं, जैसे कि इन शिकारी कुत्तों या इन घृणित पग-श्वानों और छुटके कुत्तों के हैं। हाँ, सिर्फ दो दिन बचे हैं, दो छोटे-से दिन।... यहाँ तो समय भयानक

लंबा और भयानक छोटा होता है। उसे रात को भी नींद नहीं आती थी। उसे गाँव, खेतों और जंगल के सपने आते थे।... ओफ़, वह उस घुँघराले बालोंवाले बोर्या की नजर में आया ही क्यों, जिसने कि उसे इतनी जल्दी भुला भी दिया।

पोस्तोइको बहुत ही दुबला हो गया था, और उदास होकर कोने में जा बैठा था। आह, जो होना है, होकर ही रहेगा। होनी को कोई टाल नहीं सकता। हाँ।...

चौथा दिन भी निकल गया।

पाँचवाँ दिन शुरू हो गया था। पोस्तोइको फूस पर लेटा हुआ था। दरवाजा खुलने पर उसने अपना सिर तक नहीं उठाया। वह इतनी बार भ्रमित हो चुका था कि इस बार उसमें भ्रमित होने की ताकत तक नहीं बची थी। अरे, उसके कानों में कोई परिचित कदम और परिचित स्वर पड़ रहा था। मगर यह भी भ्रम ही निकला। इससे अधिक भयानक और क्या हो सकता है?... पोस्तोइको घोर निराशा में डूब गया था। अब वह अपनी नियति की प्रतीक्षा में था। जो होना है, जल्दी हो जाए।... ऐसी निराशा के क्षण में उसे अचानक यह सुनाई पड़ा—

''हमारा कुत्ता आपके यहाँ तो नहीं है क्या?''

''कौन-सी नस्ल का है?''

''नस्ल तो कोई नहीं है, भाई।...हमारे गाँव का कुत्ता है।''

''अच्छा, तो उसका रंग बताओ।''

''रंग कोई नहीं है।... ऐसा है कि उसकी पूँछ मुड़ी हुई है, झबरीला है। मुझे दिखा दो तो मैं उसे पहचान लूँ।''

''उसका नाम पोस्तोइको है।'' किसी बच्चे ने इतना और जोड़ दिया।

शुरू में तो पोस्तोइको को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ।... ऐसे स्वर वह कितनी ही बार सुन चुका था।

इतने में उसी की ओर इशारा करती हुई अंद्रेयेव्ना बोली—

''वो बैठा है, हमारा पोस्तोइको। ओह, पोस्तोइको बेटे!...कितना दुबला हो गया है रे तू।... बेचारा!''

पोस्तोइको को छोड़ दिया गया और वह पगलाया-सा अंद्रेयेव्ना और बोर्या के पास ही चक्कर लगाता रहा।

निरीक्षक ने कहा—

''अगर आप लोग आज न आए होते तो आपके पोस्तोइको का अंत आ गया होता। वो देखो—कितने सारे कुत्ते बैठे हैं हमारे यहाँ।...दया तो आती है, पर मारना पड़ता ही है।''

अंद्रेयेव्ना और बोर्या ने बहुत देर तक कोठड़ी के सभी भागों का चक्कर लगाया और मुक्त होने के इच्छुक किंकियाते हुए कुत्तों को प्यार भी किया। उदार स्वभाव की अंद्रेयेव्ना के तो आँसू भी निकल आए—अगर उसके पास इतने रुपए होते तो वह सारे-के-सारे कुत्तों को छुड़ा लेती। इस बीच पोस्तोइको ने आर्गुस को ढूँढ लिया था।

पोस्तोइको ने अपनी दुम हिलाते हुए आर्गुस से कहा—

''अच्छा भाई, चलता हूँ। हो सकता है कि शायद तुझे भी कोई छुड़ाने आ जाए।...''

''नहीं, मुझे तो भुला दिया गया है।'' आर्गुस ने उदास भाव से कहा और अपनी समझदार आँखों से उस भाग्यशाली को विदाई दी।

खुशी से पागल हुआ पोस्तोइको तेजी से बाहर निकल आया और कूदने तथा किंकियाने लगा। उधर कोठड़ी में वैसी ही दयनीय कराहें, रुदन और निराशापूर्ण भौंकें सुनाई दे रही थीं।

''अगर हम एक ही गाँव के रहनेवाले न होते तो तुझे भी रस्सी में लटकना पड़ सकता था।'' अंद्रेयेव्ना ने पोस्तोइको को समझाते हुए कहा जो उसी के पास कूदे जा रहा था। उसने आगे कहा, ''इधर देख, बदमाश!''

प्रियौमिश

दोपहर का समय था। गर्मी के मौसम की बारिश लगातार जारी थी। ऐसे मौसम में मुझे जंगल में घूमना अच्छा लगता है, खासकर तब जब आगे कोई ऐसी जगह हो जहाँ बारिश की ठंडक से थोड़ी राहत मिल सके और अपने आपको सुखाया भी जा सके। वैसे, गर्मियों की बारिश में ठंडक नहीं होती है। ऐसे मौसम में शहर में तो कीचड़ हो जाता है जबकिजंगल की मिट्टी सारी नमी को अपने अंदर चूस लेती है। ऐसे में पिछले साल के गिरे हुए सूखे पत्तों और चीड़ तथा देवदार की नुकीली पत्तियों की नमी से भरी चादर पर कदम रखते हुए सावधानी के साथ चलना पड़ता है। पेड़ बारिश की बूँदों से ढके होते हैं जो हर कदम पर ऊपर से टपकती रहती हैं। जब ऐसी बारिश के बाद सूरज निकलता है तो जंगल हरा-भरा दिखाई देने लगता है और सारा-का-सारा हीरे जैसा दमक उठता है। चारों ओर उत्सव जैसा और खुशी का माहौल बन जाता है, और ऐसा महसूस होता है जैसे कि इस पर्व में हम वांछित तथा चहेते अतिथि हैं।

ठीक ऐसी ही बारिश के दिन मैं स्वेत्लोए सरोवर पर मछुआरों की बस्ती में अपने परिचित पहरेदार तरास के पास गया हुआ था। बारिश कम हो गई थी। एक तरफ से आसमान खुल गया था, थोड़ा और खुल जाता तो कुछ गर्मी लिए सूरज भी निकल आता। जंगल की पगडंडी एकदम से मुड़ गई और मैं अंतरीप जैसी ऐसी ढलान पर आ पहुँचा जिसकी लंबी जीभ सीधे सरोवर से जाकर मिलती थी। ठीक-ठीक कहा जाए तो यह असली सरोवर नहीं था, यह तो दो झीलों के बीच बनी हुई एक चौड़ी धारा थी। मछुआरों की बस्ती निचले तट के मोड़ पर स्थित थी। वहीं पर छोटी-सी खाड़ी में मछुआरों की नावें रहती थीं। दो झीलों के बीच वह धारा इसलिए बन गई थी क्योंकि वहाँ पर एक घना विशाल टापू था जो मछुआरों की बस्ती के ठीक सामने हरे-हरे टोप की तरह फैला हुआ था।

उस अंतरीप पर मेरी उपस्थिति देखकर तरास का कुत्ता चौकन्ना होकर भौंकने लगा—अपरिचित लोगों पर उसका भौंकना अलग ही तरह का होता था, रुक-रुक कर और बहुत तेज़, जैसे कि वह गुस्साए स्वर में पूछ रहा हो, ''कौन है?'' मुझे ऐसे सीधे-सादे कुत्ते ही उनकी असाधारण समझदारी और वफ़ादारी के कारण पसंद आते हैं।

मछुआरे की कोठरी दूर से ऐसी दिखाई देती थी जैसे कि उलटी रखी हुई कोई बड़ी नाव हो। वास्तव में लकड़ी की उसकी पुरानी छत झुकने लगी थी और उस पर ढेर सारी घास उग आई थी। कोठरी के चारों ओर भिंसा घास, सेज घास और एंजेलिका की झाड़ियाँ इतनी घनी उग आई थीं कि पास आ रहे व्यक्ति की केवल खोपड़ी ही नज़र आती थी। इतनी घनी घास सिर्फ़ झील के तटों पर ही उगती थी क्योंकि वहाँ पर नमी पर्याप्त मात्रा में थी और वहाँ की मिट्टी भी अच्छी थी।

मैं उस कोठरी के पास पहुँचने वाला था कि घनी घास के अंदर से एक चितकबरा कुत्ता बाहर निकला और बुरी तरह भौंकने लगा।

''सोबोल्को, चुप!...पहचाना नहीं क्या?''

सोबोल्को सोच में पड़कर रुक गया। उसे देखकर तो लगता था कि पुरानी दोस्ती पर उसे विश्वास नहीं है। वह सहमता हुआ मेरे पास आया, मेरे शिकारी जूते सूँघे और इतनी सब औपचारिकता पूरी कर लेने के बाद ही उसने अपराध-बोध से अपनी दुम हिला दी। जैसे कि

वह यह कहना चाह रहा हो कि मुझसे गलती हो गई किंतु घर की रक्षा करना भी तो मेरा कर्तव्य है।

कोठरी में कोई नहीं था। मालिक वहाँ था नहीं। बहुत संभव है कि वह मछली पकड़ने के किसी उपकरण की जाँच करने के वास्ते सरोवर को गया होगा। कोठरी के आसपास जो कुछ भी था उसे देखने से मनुष्य की उपस्थिति का आभास होता था—हल्का-सा धुआँ छोड़ती हुई आग, अभी-अभी काटी गई लकड़ी का गट्ठर, कीलों पर सुखाने को डाला गया जाल, पेड़ की ठूँठ में गड़ी हुई कुल्हाड़ी। कोठरी के अधखुले दरवाजे से तरास की सारी गृहस्थी नज़र आ रही थी—दीवार पर लटकती हुई बंदूक, भट्टी के पास घड़ौंची पर रखे हुए कलश, बेंच के नीचे रखा हुआ संदूक, इधर-उधर टँगे हुए उपकरण। कोठरी में जगह तो बहुत थी क्योंकि जाड़ों में मछली पकड़ने के दिनों में मछुआरों की पूरी मंडली वहाँ आकर ठहरती थी। गर्मियों में बूढ़ा मछुआरा अकेला ही रहता था। चाहे कैसा भी मौसम हो, वह हर रोज रूसी चूल्हे को तपाता था और ऊपर लगे फट्टों पर सोता था। गर्मी के प्रति तरास का यह मोह उसकी आयु के कारण था—उसकी आयु नब्बे साल के करीब थी। मैं 'करीब' इसीलिए कह रहा हूँ क्योंकि स्वयं तरास को ही भूल चुका था कि वह कब पैदा हुआ था। उसी के शब्दों में, ''फ्रांसीसियों से पहले की बात है।'' अर्थात् सन् 1812 में रूस पर हुए फ्रांसीसियों के आक्रमण से पहले।

अपनी भीगी हुई जाकेट उतारकर और शिकार के सामान को दीवार पर टाँगकर मैं आग जलाने में जुट गया। किसी टुकड़े की आस में सोबोल्को मेरे आसपास चक्कर काटे जा रहा था। आग अच्छी तरह से जल उठी और उसमें से नीली लपट ऊपर को उठने लगी। बारिश तो बंद हो चुकी थी। आकाश में बादल छितरे हुए थे, और कभी-कभी बूँदा-बाँदी हो रही थी। कहीं-कहीं नीला आसमान भी दिखाई दे रहा था। बाद में सूरज भी निकल आया था— जुलाई का तेज सूरज जिसकी

किरणों से गीली घास बिल्कुल जल-सी गई थी। सरोवर का पानी बिल्कुल शांत था, जैसा कि केवल बारिश के बाद ही होता है। ताजी घास, सेज और थोड़ी दूरी पर के चीड़ के जंगल से लीसे की गंध आ रही थी। कुल मिलाकर बहुत अच्छा लग रहा था, जैसा कि घने जंगल के किसी कोने में अपने को पाकर लगना चाहिए। दाईं ओर जहाँ पर धारा समाप्त होती थी स्वेत्लोए सरोवर नीला चमकता हुआ दिखाई दे रहा था और उसके पार दंत-पंक्ति की तरह पहाड़ नजर आ रहे थे। बहुत ही सुंदर जगह थी। बूढ़े तरास ने पूरे चालीस साल यहाँ पर यों ही नहीं बिता दिए थे। किसी शहर में तो वह इसका आधा भी नहीं जी सकता था क्योंकि वहाँ तो कितने भी रुपए देकर ऐसी स्वच्छ हवा नहीं मिल सकती है और उससे भी बढ़ कर तो ऐसी शांति जो यहाँ चारों ओर व्याप्त है। मछुआरों की इस बस्ती में कैसा अच्छा लग रहा है।... आग बहुत अच्छी जल रही थी। सूरज भी तपना शुरू हो गया था। दूर तक चमकते हुए इस अद्‌भुत सरोवर को देखते हुए आँखें चौंधिया रही थीं। मन करता था कि यहीं बैठा रहूँ और जंगल के इस मुक्त वातावरण का आनंद लेता रहूँ। शहर के बारे में सोचना दुःस्वप्न की तरह लग रहा था।

बूढ़े तरास की प्रतीक्षा में मैंने ताँबे की सफ़री केतली में चाय का पानी भर कर उसे लंबी डंडी पर बाँधकर आग के ऊपर लटका दिया। पानी तो उबलने भी लगा था परंतु तरास अभी तक भी नहीं आया था।

मैंने अपने आप से ही बोलकर कहा—

''वह कहाँ जा सकता है? मछली पकड़ने के उपकरणों को तो सवेरे के समय देखा जाता है, अब तो दोपहर हो चुकी है।... हो सकता है कि वह यह देखने चला गया हो कि कहीं कोई व्यक्ति मछलियाँ पकड़ने को तो नहीं बैठ गया है, चाहे उनकी माँग न भी हो।... सोबोल्को, तेरा मालिक कहाँ गायब हो गया है?''

उस समझदार कुत्ते ने अपनी रोएँदार पूँछ हिला दी, वह अपने होंठों को चाटने और अधीर होकर भौंकने लगा। सोबोल्को देखने में 'व्यावसायिक' कुत्तों जैसा लगता था—कद का छोटा, मुँह आगे को निकला हुआ, कान खड़े हुए और पूँछ ऊपर को मुड़ी हुई। उसके ये नाक-नक्श रखवाली करनेवाले साधारण कुत्तों जैसे थे। परंतु उसमें तथा साधारण कुत्तों में बहुत फ़र्क था—रखवाली करनेवाला कोई साधारण कुत्ता जंगल में गिलहरी को नहीं ढूँढ सकता था, न जंगली तीतर जैसे पक्षी को भौंक-भौंक कर भगा ही सकता था, न हिरन का पीछा कर सकता था। संक्षेप में कहो तो वह असली व्यावसायिक कुत्ता था, मनुष्य का सच्चा साथी। ऐसे कुत्ते के गुणों का पूरी तरह से मूल्यांकन उसे जंगल में देखकर ही किया जा सकता है।

जब मनुष्य का यह 'सबसे वफ़ादार दोस्त' खुशी के मारे किंकियाने लगा, तब मैं समझ गया कि उसे अपना मालिक दिखाई दे गया है। वास्तव में ही पानी की उस धारा में मछुआरे की नाव काले धब्बे-सी नज़र आने लगी थी जो उस समय टापू के पास से मुड़ रही थी। तरास दिखाई दे गया था।...वह नाव पर खड़ा हुआ था और बड़ी कुशलता के साथ एक चप्पू से नाव को चला रहा था। असली मछुआरे अपनी एक लक्कड़ की नाव पर ही मछली पकड़ने निकलते हैं और इसीलिए तो इन नावों को 'डोंगी' कहा जाता है। जब नाव कुछ निकट आ गई तब उसके आगे-आगे तैरते हुए एक हंस को देखकर तो मैं हैरान ही रह गया।

सुंदर तैराकी करनेवाले उस हंस से बूढ़े तरास ने बड़बड़ाकर कहा—

''अपने घर जा, बहुत डोलता है, घुमक्कड़ कहीं का! जा, चले जा।... मैं अभी तुझे मजा चखाता हूँ—ऐसे भागेगा कि पता तक नहीं चलेगा।...जा, बहुत डोल लिया।''

हंस अपनी सुंदर चाल से तैर कर मछुआरों की बस्ती तक आकर तट पर निकल आया, उसने अपने पंख फड़फड़ाए और बड़ी मुश्किल से अपने काले टेढ़े पाँवों को आगे बढ़ाते हुए तरास की कोठरी की ओर चल दिया।

2

बूढ़ा तरास ऊँचे कद का था। उसकी दाढ़ी घनी और सफेद थी। उसकी भूरी आँखें बड़ी-बड़ी और कठोर थीं। पूरी गर्मी भर वह नंगे पाँव और बिना टोपी के रहता था। आश्चर्य की बात है कि उसके सारे-के-सारे दाँत सही-सलामत थे और सिर के बाल भी झड़े नहीं थे। उसके तपे हुए चौड़े मुँह पर गहरी झुर्रियाँ निकल आई थीं। गर्मियों में वह किसानों वाली मोटी नीली कमीज ही पहनता था।

''नमस्कार, बाबा!''

''नमस्कार, मालिक!''

''कितनी दूर चले गए थे?''

''मैं इस प्रियौमिश (दत्तक संतान) के पीछे-पीछे, इस हंस के पीछे-पीछे चला गया था।...यहीं पर धारा में ही चक्कर काट रहा था और फिर अचानक गायब हो गया।...हूँ, मैं अभी इसी को ढूँढने तो गया था। झील की तरफ निकला था, पर वहाँ नहीं मिला। फिर खड़े पानी में जाकर देखा, वहाँ भी नहीं मिला। फिर देखा किहंस महाशय तो टापू के उस पार तैर रहे हैं।

''यह हंस आपको मिला कहाँ से?''

''ईश्वर का भेजा हुआ है, हाँ।...यहाँ ईश्वर के भेजे हुए बहुत सारे शिकारी आ गए थे। उन्होंने हंस और हंसिनी पर गोली चलाई। ये वाला हंस बच गया। वह बेंत की झाड़ियों में जा छिपा और वहीं बैठा रहा। इसे उड़ना तो आता नहीं है, इसलिए छिपा रहा, बच्चों की तरह। मैंने बेंत

के पास जाल डाला और उसे पकड़ लिया। बेचारा अकेला मारा जाएगा। इसे तो इतनी भी समझ नहीं है कि उसे बाज खा जाएँगे। बेचारा अनाथ हो गया था। इसीलिए मैं इसे ले आया हूँ और अपने साथ रखे हुए हूँ। इसे भी अब आदत पड़ गई है।... हमें साथ रहते हुए अब एक महीना होनेवाला है। सवेरे भोर होते ही उठ जाता है, थोड़ी देर पानी की धार में तैरता है और फिर वापस लौट आता है। इसे मेरे उठने का समय मालूम है और इंतज़ार में रहता है कि कब उसे चारा मिलेगा। समझदार पक्षी है। संक्षेप में कहूँ तो इसे अपनी पूरी दिनचर्या मालूम है।''

बूढ़ा तरास उस हंस के बारे में इतने शौक से सब कुछ बता रहा था जैसे कि वह कोई निकट का व्यक्ति हो। हंस लड़खड़ाते हुए कोठरी के पास तक आ गया था और, स्पष्टतः, किसी टुकड़े की आस लगाए हुए था।

मैंने कहा—

''ये तो उड़कर भाग जाएगा, बाबा।''

''इसे भागने की क्या पड़ी? यहाँ अच्छा तो है—पेट भरा रहता है, चारों ओर पानी है।''

''पर जाड़ों में?''

''जाड़ों में मेरे साथ कोठरी में रह लेगा। जगह काफ़ी है। मेरे और सोबोल्को के लिए भी अच्छा रहेगा। एक बार एक शिकारी भूल से मेरे पास आ गया था। हंस को देखकर उसने भी ऐसा ही कहा था, 'अगर पंख नहीं कटे हैं तो उड़कर भाग जाएगा।' भगवान के बनाए पक्षी का अंग-भंग भला कैसे किया जा सकता है? जैसा ईश्वर ने उसके भाग्य में लिखा है, उसे वैसा जीने दो।... मनुष्य का भाग्य अलग है और पक्षी का भाग्य अलग।... मुझे समझ में नहीं आता है कि उन लोगों ने हंसों पर गोली क्यों चलाई। उन्हें खाया तो नहीं जाता है, बस, अपना शौक पूरा करने को।''

हंस को बूढ़े तरास की सारी बातें समझ आ रही थीं और वह अपनी आँखों से उसकी ओर देखे जा रहा था।

मैंने तरास बाबा से पूछा, ''सोबोल्को के साथ रहने में इसे कैसा लग रहा है?''

''शुरू में तो डरता था, पर बाद में आदत पड़ गई। अब तो ऐसा हो गया है कि कभी-कभी हंस ही सोबोल्को के मुँह से टुकड़ा छीन लेता है। अगर सोबोल्को उस पर गुर्राता है तो वह अपने पंख फड़फड़ा देता है। पास खड़े होकर इन्हें देखने में आनंद आता है। कभी-कभी दोनों एक साथ सैर पर भी निकल पड़ते हैं—हंस पानी पर से होकर जाता है और सोबोल्को तट के रास्ते। एक बार सोबोल्को ने हंस के पीछे-पीछे तैरने की कोशिश की तो थी पर उसके बस का नहीं था—डूबते-डूबते बच गया था। अगर हंस तैरकर दूर निकल जाता है तो सोबोल्को उसे ढूँढता ही रह जाता है। सरोवर के किनारे पर बैठकर क्रंदन करने लगता है।... मानो, यह कह रहा हो कि मुझे तेरे बिना अच्छा नहीं लग रहा है, मैं तेरा दिली दोस्त हूँ। इस तरह हम तीनों एक साथ रह रहे हैं।''

मुझे बूढ़ा तरास बहुत पसंद था। उसका वर्णन करने का ढंग बहुत बढ़िया था और वह बहुत कुछ जानता था। बूढ़े लोगों में कुछ ऐसे भले और बुद्धिमान भी होते हैं। गर्मियों की कई रातें मैं मछुआरों की बस्ती में काट चुका था और हर बार कुछ-न-कुछ नया मुझे प्राप्त हुआ था। पहले तो तरास भी शिकार करने जाया करता था और आसपास पचास कोस तक की जगहों को अच्छी तरह से जानता था, जंगल के पक्षियों और जंगल के जानवरों की तरह-तरह की आदतों की उसे पहचान थी। अब वह दूर नहीं जा पाता था और केवल अपनी मछलियों की ही खबर रखता था। कंधे पर बंदूक लटकाकर जंगल में और विशेषकर पहाड़ों में घूमने की अपेक्षा नाव में जाना कहीं आसान है। अब तरास ने बंदूक सिर्फ़ पुरानी याद के तौर पर रखी हुई है या इसलिए कि अगर

कहीं कोई भेड़िया आ गया तो ज़रूरत पड़ सकती है। जाड़ों में भेड़िये मछुआरों की बस्ती तक आ जाते थे और बहुत समय से उन्होंने सोबोल्को पर नज़रें गड़ा रखी थीं। पर सोबोल्को भी कम चतुर नहीं था और वह भेड़ियों के हाथ नहीं पड़ा था।

मैंने सारा दिन मछुआरों की बस्ती में बिता दिया था। हम शाम के समय मछली पकड़ने गए और रात के लिए जाल डाल दिया। यह स्वेत्लोए सरोवर ('उजली झील'—अनु.) बहुत सुंदर है और उसका यह नाम यों ही नहीं पड़ गया है। उसका पानी इतना पारदर्शी है कि नाव में बैठकर उसका तल कई मीटर नीचे तक बिल्कुल साफ दिखाई देता है। नदी की पीली बालू, समुद्री शैवाल और रंग-बिरंगे पत्थर भी नज़र आते हैं। मछलियों के झुंड भी तैरते हुए दिखाई पड़ते हैं। यूराल क्षेत्र में इस तरह की पर्वतीय झीलें सैकड़ों की संख्या में हैं, और सब का अपना-अपना अनोखा सौंदर्य है। बाकी झीलों से स्वेत्लोए सरोवर इस मायने में अलग है क्योंकि वह एक ही तरफ से पहाड़ से लगा हुआ है और दूसरी तरफ से वह 'स्तपी' की ओर खुलता है जहाँ से बाश्कीरिया की भाग्यशाली धरती शुरू हो जाती है। स्वेत्लोए सरोवर के चारों ओर कई सारे खुले-खुले स्थान हैं। वहाँ से बड़ी तेजी के साथ एक पहाड़ी नदी निकलती है जो स्तपी की भूमि में एक हजार मील दूर तक जाती है। सरोवर की लंबाई कोई बीस कोस थी और चौड़ाई में वह लगभग नौ कोस तक फैला हुआ था। उसकी गहराई, कुछ जगहों पर, पंद्रह मीटर तक चली गई थी।...घने पेड़ों से आच्छादित उसके टापुओं ने उसे विशेष सुंदरता प्रदान की थी। इस तरह का एक टापू सरोवर के ठीक बीच में स्थित था जिसका नाम था गोलोदाइ ('भूखे रहो'— अनु.) क्योंकि खराब मौसम में उस टापू पर पहुँचकर मछुआरों को कई बार कई-कई दिनों तक भूखा रहना पड़ जाता था।

तरास को स्वेत्लोए सरोवर के पास रहते हुए चालीस साल हो गए थे। कभी उसका भी अपना परिवार और मकान होता था पर अब तो वह अकेला ही था। बच्चे एक के बाद एक जाते रहे थे, पत्नी का भी स्वर्गवास हो चुका था, और स्वयं तरास कई सालों से यहीं रह रहा था, यहाँ से कभी बाहर भी नहीं गया था।

जब हम मछली पकड़कर वापस लौट रहे थे, तब मैंने तरास से पूछा—

''बाबा, आप यहाँ रहते-रहते उकता नहीं गए हैं क्या? जंगल में तो भयानक अकेलापन है।''

''अकेलापन? आप कैसी बात कर रहे हैं, मालिक!... मैं तो यहाँ राजकुमार की तरह रह रहा हूँ। मेरे पास क्या नहीं है?... सब तरह के पक्षी हैं, मछलियाँ हैं, तरह-तरह की घास है। ठीक है कि इन्हें बोलना नहीं आता है, पर मैं तो इनकी बातें समझ जाता हूँ। किसी ईश्वरीय रचना को देखकर मन कितना प्रसन्न होता है।... सबके अपने-अपने नियम और अपनी-अपनी बुद्धि है। क्या आप सोचते हैं कि मछली पानी में या पक्षी आकाश में यों ही उड़ते हैं? नहीं, उनकी चिंताएँ हमारी चिंताओं से कम नहीं हैं।...उधर देखो, हंस और सोबोल्को हमारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। ओह, बदमाश कहीं के!''

बूढ़ा तरास अपनी गोद ली संतान, 'प्रियौमिश' से संतुष्ट था। सारी बातें आखिरकार उसी पर आकर टिक जाती थीं।

तरास ने समझाते हुए कहा—

''बहुत गर्वीला और वास्तव में ही राजसी पक्षी है। अगर खाने का लालच देकर बुलाया और कुछ नहीं दिया तो अगली बार आएगा ही नहीं। उसके अपने भी सिद्धांत हैं, पक्षी है तो क्या हुआ।...सोबोल्को के साथ भी स्वाभिमान के साथ रहता है। जरा-सा भी कुछ हुआ तो पंख फड़फड़ा देगा या चोंच मार देगा। अगर कभी कुत्ते महाशय ने कोई छेड़खानी करने की कोशिश की तो या अपने दाँतों से उसकी पूँछ

को छेड़ा तो हंस सीधे उसके मुँह पर हमला बोल देता है।...उसे क्या खिलौना समझ रखा है कि उसकी पूँछ ही पकड़ने लगे!''

रात वहीं बिताकर अगले दिन मैं चलने को हुआ।

बूढ़े तरास ने मुझे विदा करते हुए कहा—

''शरद ऋतु के बाद आना। तब मछली वाले बर्छे के साथ मछली पकड़ेंगे। तीतर का शिकार भी करेंगे। शरद ऋतु के तीतर खूब मोटे होते हैं।''

''ठीक है, बाबा। जैसे भी हो, आऊँगा।''

जब मैं वहाँ से आगे बढ़ रहा था, बूढ़े तरास ने मुझे वापस बुलाकर कहा—

''देखिए तो, महाराज, हंस और सोबोल्को खेल में कितने मस्त हो गए हैं।''

वास्तव में ही, वह अद्‌भुत दृश्य देखने लायक था। हंस अपने पंख फैला कर खड़ा हुआ था और सोबोल्को किंकियाता और भौंकता हुआ उस पर हमला कर रहा था। समझदार हंस ने अपनी गर्दन आगे को निकालकर सोबोल्को पर फुफकार मारी, जैसा कि हंस करते ही हैं। बूढ़ा तरास इस दृश्य को देखकर बच्चों की तरह खिलखिला उठा।

3

अगली बार मैं स्वेत्लोए सरोवर तब आया जब शरद ऋतु समाप्ति पर थी और पहला-पहला हिमपात हुआ था। जंगल तो अभी भी आकर्षित कर रहा था। सरोवर के किनारों पर कहीं-कहीं पीले पत्ते अभी तक पड़े हुए थे। देवदार और चीड़ के पेड़ गर्मियों की अपेक्षा इन दिनों ज्यादा सफ़ेद दिखाई पड़ रहे थे। बर्फ़ के अंदर से प्रकट होती हुई शरद ऋतु की सूखी घास पीले बुरुश जैसी लग रही थी। चारों ओर घोर सन्नाटा छाया हुआ था—ऐसा लग रहा था मानो कि गर्मी के हाड़-तोड़ काम से थककर प्रकृति भी अब विश्राम कर रही हो। स्वेत्लोए सरोवर का आकार

बड़ा दिखाई दे रहा था क्योंकि उसके तट की घास तो लुप्त हो चुकी थी। उसका पारदर्शी जल कालिमा लिए हुए दिखाई दे रहा था और शरद ऋतु की तेज तरंगें शोर मचाती हुईं उसके तट से टकरा रही थीं।

तरास की कोठरी अपनी पुरानी जगह पर ही थी, पर ऐसा लग रहा था जैसे कि कुछ ऊँची हो गई हो क्योंकि उसके चारों ओर की ऊँची घास अब रह नहीं गई थी। मेरा स्वागत करने को वही सोबोल्को बाहर आया। अब की बार उसने मुझे पहचान लिया था और दूर से बड़े प्यार से दुम हिलाए जा रहा था। तरास घर पर ही था। इस समय वह जाड़ों में मछली पकड़ने के लिए अपने कोना-जाल की मरम्मत कर रहा था।

''नमस्ते, बाबा!''

''नमस्ते, मालिक!''

''कैसे हालचाल हैं?''

''खास कुछ नहीं है।... शरद ऋतु के आखिरी दिनों में, पहली-पहली बर्फ़ गिरने के समय, तबीयत जरा खराब हो गई थी। पाँवों में दर्द था।...मौसम खराब होने पर हमेशा ही ऐसा हो जाता है।''

वास्तव में ही बूढ़ा तरास थका हुआ दिखाई दे रहा था। इस समय वह, वास्तव में ही, बहुत दुर्बल और दयनीय दिखाई दे रहा था। वैसे, बाद में यह पता चला कि उसकी दुर्बलता और दयनीयता का इस बीमारी से कोई संबंध नहीं है। चाय पीते समय हमने बहुत-सी बातें कीं और तब तरास ने अपना दुख बयान किया।

''मालिक, आपको हंस की याद है ना?''

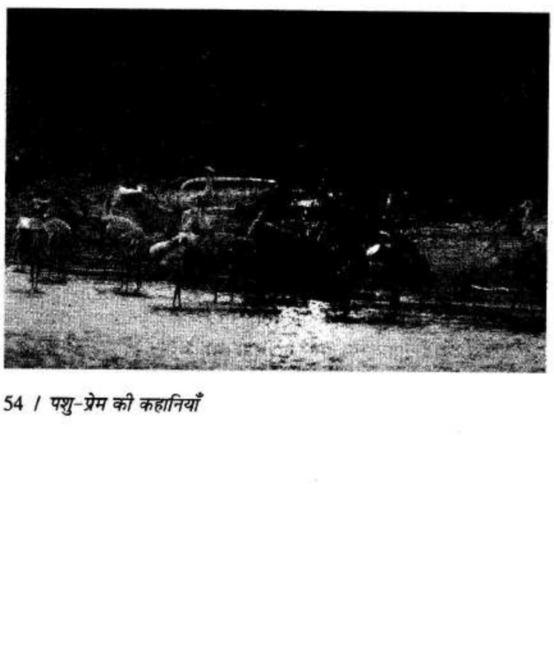
''जो आपकी दत्तक संतान थी, वही?''

''हाँ, वहीं तो।...कितना अच्छा पक्षी था वह।... अब फिर से मैं सोबोल्को के साथ अकेला रह गया हूँ।...मेरा प्रियौमिश नहीं रहा।''

''क्या किसी शिकारी ने तो नहीं मार दिया?''

''नहीं, खुद ही चला गया।...मुझे बहुत ही बुरा लग रहा है,

मालिक... मैं उसकी पूरी देखभाल करता था, उसके पीछे लगा रहता था।...अपने हाथों से उसे खिलाता था।...मेरी आवाज सुनते ही वह मेरे पास चला आता था। जब वह सरोवर में तैर रहा होता था तो मेरे आवाज देने पर तुरंत पास आ जाता था। सिखाया हुआ पक्षी था। उसे आदत भी पड़ गई थी, हाँ!...पर पाले के दिनों में मुसीबत आ पड़ी थी। ऊपर से उड़ कर जाता हुआ हंसों का एक झुंड स्वेल्लोए सरोवर पर आकर उतर गया। हंस वहीं आराम करने लगे। उन्हें चारा खाते और तैरते हुए देखकर मुझे आनंद आता था। ठीक है, कुछ शक्ति बटोर लें तो अच्छा ही रहेगा क्योंकि उन्हें बहुत दूर तक उड़ कर जाना है।...यहीं पर मुझसे गलती हो गई। शुरू-शुरू में तो मेरा पाला हुआ वह प्रियौमिश उन हंसों से दूर रहता था—उनके पास जाकर वापस आ जाता था। बाकी हंस कुट्-कुट् करके उसे बुलाते थे पर वह अपने घर को वापस आ जाता था।...जैसे कि कहता हो कि मेरा अपना घर है। इस तरह तीन दिन बीत गए। हंस आपस में कुटकुटाते हुए कुछ बतियाते रहते थे। फिर मुझे अपनेवाले हंस के चेहरे पर भी उदासी नज़र आने



लगी।...बिल्कुल वैसी ही उदासी जैसी कि मनुष्य के चेहरे पर आ जाती है। तट पर आकर और एक पाँव पर खड़े होकर वह चिल्लाने लगता था। उसका वह क्रंदन बहुत ही दयनीय होता था।...उसका वह क्रंदन मुझे भी उदास कर देता था, और मूर्ख सोबोल्को तो भेड़िये की तरह गुर्राने लगता था। ठीक ही है, वह मुक्त आकाश का पक्षी था, उसका मूल स्वभाव फिर से जाग्रत हो गया था।''

यह कहते-कहते बूढ़ा तरास एक गहरी साँस लेकर चुप हो गया।

''फिर क्या हुआ, बाबा?''

''आह, मत पूछो!... मैंने उसे दिन भर के लिए कोठरी के अंदर बंद कर दिया पर वहाँ तो उसने गजब ही कर दिया। ठीक दरवाजे के पास आकर एक पाँव पर खड़ा हो गया और जब तक उसे वहाँ से निकाला नहीं, वैसे ही खड़ा रहा। जैसे कि वह कहना चाह रहा हो पर मनुष्य की भाषा में कह नहीं पा रहा था, 'मुझे अपने साथियों के पास जाने दो, बाबा। वे तो गरम जगह को चले जाएँगे, मैं यहाँ जाड़ों भर आपके साथ क्या करूँगा?' मैं मन-ही-मन सोच रहा था कि यह आसान काम नहीं है। अगर छोड़ दिया तो झुंड के साथ चल तो देगा पर रास्ते में कहीं रह जाएगा।''

''रह कैसे जाएगा?''

''और क्या?... ये दूसरे पक्षी तो हमेशा से ही मुक्त रहे हैं। उनमें से जो छोटे हैं उन्हें उनके माता-पिता ने उड़ना सिखाया है। आप सोचते होंगे कि ऐसा कैसे हो सकता है? हंसों के बच्चे जब कुछ बड़े हो जाते हैं तब उनके माता-पिता पहले तो उन्हें पानी में ले जाते हैं और उसके बाद उड़ना सिखाते हैं। जितना हो सकता है, उतना सिखा देते हैं—दूर-दूर तक की उड़ान भरना। मैंने अपनी आँखों से हंसों के बच्चों को लंबी उड़ान के लिए सिखाया जाता हुआ देखा है। पहले अकेले-अकेले उड़ना सिखाया जाता है, फिर छोटे-छोटे झुंडों में और फिर एक बड़ा झुंड बनकर उड़ते

हैं। सैनिकों की तरह जाते हुए दिखाई देते हैं।... पर मेरा प्रियौमिश तो अकेले ही बड़ा हुआ था, सोचो कि वह कभी कहीं उड़कर भी नहीं गया था। थोड़ी देर झील में तैर लेता था—बस। वह लंबी उड़ान कैसे भर सकता है? वह तो थक जाएगा और बाकी झुंड से पिछड़कर कहीं खो जाएगा।...लंबी उड़ान की तो उसे आदत ही नहीं है।''

यह कहते-कहते बूढ़ा तरास फिर से चुप हो गया। फिर उदास स्वर में उसने आगे कहना शुरू किया—

''उसे छोड़ना तो पड़ा ही। मैंने सोचा कि अगर इसे जाड़ों तक रोककर रखा तो मारे उदासी के कहीं बीमार न पड़ जाए। है भी तो इतना विशिष्ट पक्षी। तो मैंने उसे छोड़ ही दिया। इस तरह मेरा वह प्रियौमिश हंसों के झुंड के साथ जाकर मिल ही गया। दिन भर उनके साथ तैरता रहता था और शाम को घर लौट आता था। इस तरह दो दिन तक वह आता-जाता रहा। चाहे पक्षी ही था पर अपने घर से बिछुड़ने का बुरा तो लगता ही है। वास्तव में वह विदा होने के लिए तैरकर आता था, मालिक।...आखिरी बार वह तट से लगभग बीस मीटर दूर जाकर रुक गया और अपने खास ढंग से कुटकुटाने लगा। मानो ऐसा कह रहा हो, 'आतिथ्य के लिए धन्यवाद!' मैं तो उसे बस देख ही पाया था। मैं फिर से सोबोल्को के साथ अकेला रह गया हूँ। शुरू में तो हम दोनों को प्रियौमिश की बहुत याद आती थी। जब मैं सोबोल्को से पूछता कि 'हमारा प्रियौमिश कहाँ गया?' तो वह अजीब-सी आवाज निकाल देता था।...यानी उसे बहुत बुरा लगता था। कभी तट की तरफ चले जाता, कभी कहीं और जाकर अपने प्रिय मित्र को ढूँढने लगता।...मुझे रात के समय यही सपने आते थे कि प्रियौमिश यहीं तट पर कहीं छप्-छप् कर रहा होगा और अपने पंख फड़फड़ा रहा होगा। जब मैं बाहर आकर उसे ढूँढने लगता तो कुछ भी दिखाई नहीं देता।

तो, यह बात है, मालिक!

भूरी शेइका

शरद ऋतु की पहली सर्दी पड़ते ही घास पीली पड़ गई और सभी पक्षियों को बहुत चिंता होने लगी। सब-के-सब लंबी यात्रा पर निकलने की तैयारी करने में लग गए। सभी की सूरतें गंभीर और चिंतित हो गईं। हाँ, हजारों मील की दूरी उड़कर तय करना कोई आसान काम नहीं है।...बेचारे कितने सारे पक्षी तो रास्ते में ही दम तोड़ देते हैं, कई सारे पक्षी अलग-अलग तरह की घटनाओं का शिकार हो जाते हैं। कुल मिलाकर गंभीरता से सोचने की बात थी।

हंस, बगुले और नीलसर (बत्तख की एक जाति) जैसे गंभीर किस्म के बड़े पक्षी तो पूरी गंभीरता के साथ प्रयाण की तैयारी में लग गए थे और उन्हें इस काम में सामने आनेवाली कठिनाइयों का पूरा एहसास था। सबसे ज्यादा शोर तो मचा रखा था चुपका, टिटिहरी, फैलारोप, डनलिन, पिद्दी, बटान जैसी छोटी-छोटी चिड़ियों ने जिनकी तैयारियाँ भी भारी चहल-पहल के साथ चल रही थीं। वे तो बहुत पहले से ही झुंड बना-बना कर उड़ने लगी थीं। रेतीले तट और दलदल से होकर एक तट से उड़कर दूसरे तट को इतनी तेजी से उड़कर जाती थीं जैसे किकिसी ने मुट्ठी भर कर मटर के दाने फेंक दिए हों। इन छुटकी चिड़ियों को कितना सारा काम करना था।

घने जंगल में शांति छा चुकी थी क्योंकि मुख्य-मुख्य पक्षी तो ठंड शुरू होने से पहले ही जा चुके थे।

बूढ़े नर-नीलसर ने जिसे अपने आपको ज्यादा कष्ट देना अच्छा नहीं लगता था बड़बड़ाकर कहा—

''इन छुटकियों को किधर की जल्दी पड़ी है? समय आने पर हम सभी को तो जाना है।...समझ में नहीं आता है कि इसमें चिंता करने की क्या बात है।''

उसकी पत्नी बूढ़ी नीलसर ने समझाते हुए कहा—

''तू तो हमेशा से ही आलसी रहा है। इसीलिए दूसरों को तैयारी करने में व्यस्त देखना तुझे अच्छा नहीं लग रहा है।''

''मुझे आलसी कहा? तू तो हमेशा ही मेरे खिलाफ जाती है। हाँ, और कोई बात नहीं है। हो सकता है कि मैं औरों से कुछ ज्यादा चिंता कर रहा हूँ पर मैं दिखावा नहीं करता हूँ। इसका कोई फ़ायदा नहीं है कि मैं सवेरे से लेकर रात होने तक तट पर भागता फिरूँ, शोर मचा-मचा कर औरों को तंग करता फिरूँ और सबको ऊबाकर रख दूँ।''

मादा-नीलसर अपने पति से वैसे ही असंतुष्ट रहती थी और अब तो वह पूरी तरह गुस्से में आ गई थी—

''अरे ओ आलसी, जरा औरों को तो देख, अपने इन पड़ोसियों को— बगुलों और हंसों को—देखकर कितना अच्छा लगता है। कैसे मेल के साथ रहते हैं!... हंस या बगुले अपने घोंसले को छोड़कर कभी भी नहीं जाते हैं, हमेशा अपने बच्चों का पहले ध्यान रखते हैं, हाँ।... पर तुझे तो अपने बच्चों से कोई मतलब ही नहीं है। बस, अपने ही बारे में ही सोचता रहता है कि पेट कैसे भरा जाए। और क्या कहूँ, निरा आलसी है।...तेरी ओर देखने तक में घिन आती है।''

''अरी बुढ़िया, ज्यादा बड़बड़ मत कर!...मैं तो तेरे ऐसे बुरे स्वभाव को लेकर कुछ नहीं कह रहा हूँ। सब में कोई-न-कोई कमी होती ही है।...इसमें मेरा कोई दोष नहीं है कि हंस स्वभाव से मूर्ख होता है और इसलिए अपने बच्चों के साथ इतना समय लगा देता है। मेरा

तो यह नियम है कि दूसरों के काम में दखल मत दो। आखिर क्यों? हर किसी को अपनी इच्छा के अनुसार जीने देना चाहिए।''

नर-नीलसर को गंभीर बातों पर विचार करना पसंद था और अक्सर ऐसा होता था कि वही सही, अधिक बुद्धिमान और सबसे अच्छा सिद्ध होता था। मादा-नीलसर को इस सबकी तो बहुत पहले से ही आदत पड़ चुकी थी। इस समय तो उसकी चिंता का कारण कुछ और ही था। वह पति को डाँटने लगी—

''तू भी कैसा बाप है। सभी पिता अपने-अपने बच्चों की चिंता करते हैं पर तुझे तो कोई परवाह ही नहीं है।''

''तू कहीं भूरी शेइका की बात तो नहीं कर रही है? अगर उससे



उड़ा नहीं जाता है तो मैं क्या कर सकता हूँ? इसमें मेरा तो कोई दोष नहीं है।''

उन्होंने 'भूरी शेइका' नाम अपनी उस संतान का रख रखा था जिसका एक पंख वसंत ऋतु में कट गया था जब उनके घोंसले में एक लोमड़ी चली आई थी और उसने उस बच्चे को दबोच लिया था। बूढ़ी नीलसर हिम्मत करके लोमड़ी पर झपट पड़ी थी और उसने अपने बच्चे को बचा लिया था। पर बच्चे का एक पंख टूट गया था।

आँखों में आँसू भरकर मादा-नीलसर फिर से बोली—

''मुझे तो यह सोचते ही डर लगता है कि हम अपनी भूरी शेइका को यहाँ अकेली छोड़ जाएँगे। सारे पक्षी तो चले जाएँगे, यह बेचारी बिल्कुल अकेली रह जाएगी।...हाँ, बिल्कुल अकेली। हम तो दक्षिण की तरफ चल देंगे जहाँ गर्मी पड़ती है और यह बेचारी यहाँ जाड़े में अकड़ती रहेगी।...यह हमारी ही तो बेटी है। मैं इस भूरी शेइका को कितना पसंद करती हूँ! मेरी बात सुन ले—मैं तो जाड़ों भर यहीं, इसके पास ही रहूँगी।''

''बाकी बच्चों का क्या होगा?''

''वे तो स्वस्थ हैं, मेरे बिना भी रह लेंगे।''

जब भी भूरी शेइका की बात चलती नर-नीलसर हमेशा ही बात पलटने की कोशिश करता। निश्चय ही उसे भी भूरी शेइका से बहुत प्यार था परन्तु व्यर्थ ही अपने आपको कष्ट क्यों दिया जाए? यहीं रहकर अकड़कर मर जाएगी—बुरा तो लगता है, पर कुछ किया भी नहीं जा सकता है। आखिर बाकी बच्चों के बारे में भी तो सोचना होगा। पत्नी हमेशा चिंता करती रहती है पर इस बात पर गंभीरता से विचार करने की जरूरत है। नर-नीलसर को मन-ही-मन अपनी पत्नी पर दया आ रही थी परंतु माँ के दुख को वह पूरी तरह से समझ नहीं पा रहा था। अच्छा हुआ होता अगर उस समय लोमड़ी उसे खा ही गई होती। आखिर जाड़ों में तो इसे मरना ही है।

2

बूढ़ी नीलसर को अपनी उस घायल बेटी से और भी अधिक लगाव हो गया था क्योंकि अब अलग होने दिन निकट आते जा रहे थे। उस बेचारी को तो पता भी नहीं था कि अलगाव और एकाकीपन क्या होता है, अन्य पक्षियों की तैयारियों को वह नई-नई उत्सुकता के साथ देख रही थी। उसे, अवश्य ही, कभी-कभी ईर्ष्या होती थी कि उसके भाई-बहन कितने आनंद से उड़ान की तैयारी कर रहे हैं और सब-के-सब बहुत दूर, कहीं ऐसी जगह जाकर रहेंगे जहाँ पर जाड़ा नहीं होता है।

भूरी शेइका ने अपनी माँ से पूछा—

''आप लोग वसंत में तो लौट आओगे ना?''

''हाँ-हाँ, अवश्य लौटकर आएँगे।...फिर से एक साथ रहेंगे।''

भूरी शेइका को सोच में पड़ता हुआ देखकर उसकी माँ ने नीलसरों के कुछ ऐसे उदाहरण बताए जो जाड़ों भर वहीं रही थीं। वह स्वयं ऐसे दो जोड़ों को जानती थी।

बूढ़ी नीलसर ने भूरी शेइका को समझाते हुए कहा—

''शुरू में तुझे जरूर बुरा लगेगा, फिर आदत पड़ जाएगी। अच्छा होता अगर हम तुझे किसी गर्म सोते के पास पहुँचा देते जो जाड़ों में भी जमते नहीं हैं। यहाँ से बहुत दूर भी नहीं हैं।...खाली कहने से कोई फायदा नहीं है—हम तुझे वहाँ तक पहुँचा ही नहीं सकते हैं।''

बेचारी भूरी शेइका बस एक ही बात की रट लगाए हुए थी—

''मैं तो हमेशा आप लोगों के बारे में ही सोचती रहूँगी। यही सोचती रहूँगी कि आप लोग कहाँ पर होगे, क्या कर रहे होगे, आपको अच्छा तो लग रहा होगा। मुझे तो ऐसा ही लगेगा जैसे कि मैं भी आप लोगों के साथ ही हूँ।''

बूढ़ी नीलसर को अपना दुख दबाए रखने के लिए बहुत ही अधिक प्रयास करना पड़ा था। वह ऊपर से प्रसन्न बनने की कोशिश

कर रही थी। औरों की नजरों से दूर रहकर वह चुपके-चुपके आँसू भी बहाए जा रही थी। ओफ़, उसे बेचारी प्यारी भूरी शेइका के प्रति कितनी दया आ रही थी!... इस समय तो बाकी बच्चे उसे दिखाई तक नहीं दे रहे थे और वह उनकी ओर कोई ध्यान भी नहीं दे रही थी। उसे तो ऐसा लग रहा था जैसे वह उन बच्चों को बिल्कुल भी पसंद नहीं करती है।

समय कितनी तेजी से भागा जा रहा था।...सवेरे के समय अक्सर ही ठंड हो जाया करती थी। पाला पड़ने से भूर्ज की पत्तियाँ पीली पड़ गई थीं और ऐस्प की पत्तियों का रंग लाल होने लगा था। नदी के पानी में कालिमा आ गई थी और नदी आकार में बड़ी लगने लगी थी क्योंकि उसके तट वनस्पतिविहीन हो गए थे—तटों पर उगे पेड़-पौधों के पत्ते झड़ गए थे। पेड़ों के सूखे हुए पत्ते शरद ऋतु में चलनेवाली ठंडी हवाओं से झड़कर दूर चले जा रहे थे। आसमान में शरद ऋतु के घने बादल अक्सर छा जाते थे जिनसे बीच-बीच में हल्की बारिश भी होती रहती थी। मौसम में अच्छापन तो कम ही था। कई दिनों से पक्षियों के झुंड-के-झुंड अपनी सुदूर यात्रा पर निकलते चले जा रहे थे।...सबसे पहले प्रस्थान किया दलदली चिड़ियों ने क्योंकि दलदल जमना शुरू हो गए थे। सबसे अधिक देर तक टिके रहे जल-पक्षी। सारसों को उड़ कर जाते हुए देखकर भूरी शेइका को सबसे अधिक बुरा लगा क्योंकि उनका कलरव ऐसा दयनीय था मानो कि सारस उसे ही बुला रहे हों। पहली बार में ही उसे कुछ पूर्वाभास हो गया था जिससे उसका दिल बैठ गया था और तब वह बड़ी देर तक सारसों के झुंड को उड़कर जाते हुए देखती रही थी।

"इनके कितने मजे हैं।" भूरी शेइका ने मन-ही-मन सोचा।

अब हंसों, बगुलों और नीलसरों ने भी चलने की तैयारी करनी शुरू कर दी। अलग-अलग घोंसलों की चिड़ियाँ बड़े-बड़े झुंडों में आकर

मिल गईं। बूढ़ी और अनुभवी चिड़ियाँ युवा चिड़ियों को सिखा रही थीं। हर रोज़ सवेरे ये चिड़ियाँ कलरव करती हुईं एक लंबा चक्कर लगाकर आती थीं जिससे कि लंबी उड़ान के लिए उनके पंखों में मजबूती आ जाए। उनके समझदार शिक्षक-पक्षी पहले छोटे-छोटे झुंडों को अलग-अलग सिखाते थे और फिर सबको एक साथ।...कैसा शोर मचा रहता था! युवा पक्षियों की तो खुशी का ठिकाना ही नहीं था।...केवल भूरी शेइका ही इन उड़ानों में भाग लेने में असमर्थ थी और दूर से देखकर ही वह आनंद उठा रही थी। किया भी क्या जाए? भाग्य की बात है। तैरने और डुबकी लगाने में तो किसी से पीछे नहीं थी। उसके लिए तो पानी ही सब कुछ था।

बूढ़े शिक्षकों ने कहा—

"अब चल देना चाहिए।...समय हो गया है। यहाँ रुककर अब क्या करना?"

समय बीतता जा रहा था, बड़ी तेजी से समय निकल रहा था।...वह भयानक घड़ी भी आ ही गई। पूरा-का-पूरा झुंड चहचहाता हुआ नदी के पास आकर जमा हो गया। शरद ऋतु का प्रातःकाल था जब नदी के ऊपर घने कोहरे की परत छाई हुई थी। नीलसरों के झुंड में कोई तीन सौ पक्षी थे। उस झुंड में से सिर्फ बड़े पक्षियों के ही स्वर सुनाई दे रहे थे। बूढ़ी नीलसर तो रात भर सो नहीं पाई थी—भूरी शेइका के साथ उसकी यह अंतिम रात थी। उसने अपनी बेटी को सलाह दी—

"तू नदी के उस किनारे पर जाकर रहना, वहाँ से एक चश्मा निकलता है। वहाँ का पानी पूरे जाड़ों भर जमता नहीं है।"

भूरी शेइका ने अपने आपको बाकी झुंड से अलग रखा जैसे किवह कोई बाहरी पक्षी हो।...ठीक ही तो है, सब-के-सब लंबी उड़ान को लेकर इतना अधिक व्यस्त थे कि कोई उसकी ओर ध्यान

तक नहीं दे रहा था। भूरी शेइका को देखकर बूढ़ी नीलसर के दिल में बहुत पीड़ा हो रही थी। मन-ही-मन उसने कई बार फैसला किया कि यहीं रह जाएगी। पर रहती कैसे? बाकी बच्चे भी तो हैं। सारे झुंड को साथ लेकर ही तो उड़ना पड़ेगा।

पक्षियों के सबसे बड़े नेता ने जोर से आदेश दिया—

''सब उड़ान भर लो।''

आदेश सुनते ही सारा झुंड एक साथ आकाश की ओर उड़ गया।

भूरी शेइका बहुत देर तक नदी पर अकेली बैठी रही और दूर उड़ते जा रहे झुंड को अपनी आँखों से विदा करती रही। शुरू में तो सारे पक्षी एक साथ मिलकर उड़े, फिर त्रिकोण के आकार में सीधे हो गए और कुछ देर बाद वे दृष्टि से ओझल हो गए।

भूरी शेइका की आँखों में आँसू आ गए और वह सोचने लगी, 'क्या मैं बिल्कुल अकेली हूँ? अच्छा हुआ होता अगर उस समय लोमड़ी मुझे खा ही गई होती।'

3

जिस नदी पर भूरी शेइका रह रही थी, वह नदी घने जंगल से ढके पहाड़ों में से होकर आती थी। वह बिल्कुल सुनसान जगह थी जिसके आसपास कोई बस्ती नहीं थी। सवेरे के समय नदी तट का पानी जमना शुरू हो जाता था और दोपहर में काँच की तरह जमी हुई बर्फ की पतली परत पिघलना शुरू हो जाती थी।

भूरी शेइका डर-डर कर सोच रही थी, 'क्या सचमुच सारी नदी जम जाएगी?'

भूरी शेइका अकेले रहते-रहते तंग आ गई थी। वह हमेशा अपने भाइयों और बहनों के बारे में सोचती रहती थी जो वहाँ से उड़कर चले गए थे। अब वे किस जगह होंगे? ठीक-ठाक तो पहुँच गए होंगे? क्या

उन्हें मेरी याद आती होगी? यह सोचने के लिए उसके पास समय की कमी नहीं थी। यह भी उसे पता चला कि एकाकीपन क्या होता है। नदी तो खाली पड़ी थी। जंगल में ही जीवन के लक्षण दिखाई देते थे जहाँ हैज़ल-तीतर सीटियाँ बजाते थे, गिलहरियाँ और खरगोश उछलते रहते थे। बेहद ऊब कर एक बार भूरी शेइका जंगल में चली गई और जब उसने झाड़ी के पीछे से खरगोश को तेजी से बाहर निकलता देखा तो डर के मारे उसके होश ही उड़ गए।

मगर भूरी शेइका को देखकर तो स्वयं खरगोश को ही चैन मिला और वह बोला—

''ओ-हो, तूने तो मुझे डरा ही दिया था, बेवकूफ! मेरी तो साँस अटकी रह गई थी।...तू यहाँ क्या कर रही है? सभी नीलसर तो यहाँ से कब के जा चुके हैं।''

''मैं उड़ नहीं पाती हूँ। जब मैं छोटी थी तब एक लोमड़ी ने मेरा पंख काट दिया था।''

''लोमड़ी मेरे पीछे भी पड़ी हुई है।... बहुत खराब जानवर है। मेरे पीछे भी बहुत समय से पड़ी हुई है।... तू उससे बचकर रहना, खासकर जब नदी बर्फ से ढक जाएगी। मौका देखते ही झपट पड़ेगी।''

इस तरह उनमें दोस्ती हो गई। खरगोश भी भूरी शेइका की तरह अरक्षित था और अपने आपको बचाने के लिए उसे लगातार भागते रहना पड़ता था। उसने भूरी शेइका से कहा—

''अगर पक्षी की तरह मेरे भी पंख होते तो मैं, शायद, दुनिया में किसी से भी नहीं डरता।...तेरे पास चाहे पंख नहीं हैं पर तैरना तो तुझे आता ही है, इसलिए पानी में सीधे डुबकी तो लगा सकती है। मैं हमेशा डर के मारे काँपता ही रहता हूँ।...चारों तरफ मेरे दुश्मन-ही-दुश्मन हैं। गर्मियों में तो कहीं-न-कहीं छिपने की जगह मिल जाती है पर जाड़ों में सब तरफ से खुला दिखाई देता है।''

शीघ्र ही पहला हिमपात हो गया। परंतु अभी नदी ठंड को झेल रही थी। रात को जहाँ भी बर्फ जमी होती सवेरे के समय पिघल जाती। संघर्ष पेट के लिए नहीं बल्कि मृत्यु से हो रहा था। सबसे अधिक खतरनाक तारों से भरी रातें होती थीं जब सब कुछ शांत हो जाता था और नदी में तरंगें भी नहीं उठती थीं। नदी, मानो, सुप्तावस्था में होती थी और ठंड उसे उसी हालत में बर्फ से जकड़ लेती थी। हुआ भी ऐसा ही। शांत, तारों भरी रात थी। नदी तट का घना जंगल भी शांत पड़ा था जैसे कि किसी दैत्य से रक्षा के लिए सन्नद्ध खड़ा हो। पहाड़ कुछ अधिक ऊँचे प्रतीत हो रहे थे, जैसा कि रात के समय होता ही है। ऊपर चमकता हुआ चाँद अपनी झिलमिल चमक चारों ओर बिखेर रहा था। दिन के समय शोर मचानेवाली पहाड़ी नदी भी शांत हो चुकी थी। ठंड धीरे-धीरे नदी की ओर बढ़ती हुई आई और उस गर्वीली, हठीली सुंदरी को कसकर अपने आलिंगन में ले लिया और अपने बर्फीले दर्पण से उसे ढक दिया। भूरी शेइका तो आश्चर्यचकित थी क्योंकि नदी के बीच के भाग में पानी नहीं जमा था और वहाँ पर काफी खुली जगह बच गई थी। तैरने के लिए बची खुली जगह पैंतीस मीटर से अधिक नहीं थी। भूरी शेइका की निराशा तब अपनी चरम अवस्था को पहुँच गई जब उसकी नजर तट पर जाती हुई लोमड़ी पर पड़ी। यह तो वही लोमड़ी थी जिसने उसका पंख काट डाला था।

लोमड़ी ने रुककर बड़े प्यार से उससे कहा—

''नमस्ते, मेरी पुरानी सहेली, बहुत समय से मुलाकात ही नहीं हुई है।... जाड़ों की शुभकामनाएँ।''

भूरी शेइका बोली—

''यहाँ से चली जा। मैं तुझसे बिल्कुल भी बात नहीं करना चाहती हूँ।''

''मेरे प्यार के बदले ऐसा कह रही है। तू तो बहुत भली है, यह भी कोई कहने की बात है।... वैसे बता दूँ कि मेरे बारे में लोग बहुत

आलतू-फालतू की बातें किया करते हैं। करेंगे खुद और नाम मेरा लगा देंगे।...अच्छा, चलती हूँ। नमस्ते।''

लोमड़ी के चले जाने के बाद खरगोश बाहर निकलकर आया और भूरी शेइका से बोला—

''तू उससे बच कर रहना। वह फिर से आएगी।''

फिर तो भूरी शेइका के मन में भी वैसा ही डर बैठ गया जैसा कि खरगोश के मन में बैठा हुआ था। वह बेचारी तो आसपास घट रहे आश्चर्यों का आनंद तक नहीं ले पा रही थी। सर्दी पूरे जोरों पर थी। धरती सफेद बर्फ की चादर से ढक गई थी और कोई भी जगह खाली नहीं बची थी। यहाँ तक कि पत्रविहीन भूर्ज, आल्डर, भिंसा और अंगू के वृक्षों की टहनियों पर भी बर्फ जम गई थी, जैसे कि किसी ने चाँदी की राख बिखेर दी हो। देवदार तो और भी अधिक सुंदर दिखाई दे रहे थे। बर्फ से ढके हुए देवदार ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो कि उन्होंने कोई कीमती फरकोट धारण कर लिया हो। सारा दृश्य बहुत अद्‌भुत और सुंदर था। पर बेचारी भूरी शेइका को तो बस इतना मालूम था कि यह सुंदर दृश्य उसके लिए नहीं है। वह तो यह सोचकर काँप जाती थी कि नदी में जो खुली जगह बची है वह भी जल्दी ही जम जाएगी और तब उसके लिए कोई जगह बची नहीं रहेगी। कुछ दिन बाद लोमड़ी वास्तव में ही आ गई और नदी के किनारे पर बैठकर कहने लगी—

''अरी नीलसर, मुझे तेरी याद आ रही थी। बाहर तो आ, इधर। अगर नहीं आना चाहती है तो मैं खुद ही तेरे पास आ जाती हूँ। मुझमें ऐसी अकड़ नहीं है।...

इतना कहकर लोमड़ी बहुत सावधानी से बर्फ पर पाँव रखकर पानी की तरफ आगे बढ़ने लगी। भूरी शेइका के तो प्राण ही सूखे जा रहे थे। परंतु लोमड़ी पानी तक पहुँच नहीं पाई क्योंकि आगे जाकर बर्फ बहुत पतली हो गई थी। उसने अपना सिर अगले पंजों पर रख दिया और उन्हें चाटकर बोली—

''अरी नीलसर, तू भी कैसी मूर्ख है!... बाहर बर्फ पर तो आ। वैसे मैं जल्दी में हूँ। नमस्ते। मुझे अपने बहुत सारे काम करने हैं।...''

लोमड़ी हर रोज़ आकर देख जाती थी कि सारा पानी जम गया है कि नहीं। पाला बढ़ने का असर दिखाई देने लगा था। पानीवाली खाली जगह घट कर अब सिर्फ एक ही जगह दो-ढाई मीटर की रह गई थी। बर्फ सख्त हो गई थी और लोमड़ी बिल्कुल किनारे तक आकर बैठ जाती थी। बेचारी भूरी शेइका डर के मारे पानी के अंदर चली जाती थी। लोमड़ी भी वहीं बैठी-बैठी उसे चिढ़ाती रहती थी—

''लगा ले डुबकी, लगा ले। मैं तो तुझे खाकर ही रहूँगी।...अपने आप ही बाहर आ जा।''

तट पर बैठा खरगोश लोमड़ी की करतूत को देख रहा था और अपने खरगोशी स्वभाव में अंदर-ही-अंदर भड़क भी रहा था—

''ओफ, कैसी दुष्ट लोमड़ी है!...भूरी शेइका भी कैसी बदकिस्मत है' लोमड़ी तो इसे खा ही जाएगी।...''



4

संभावना तो यही थी कि नदी का पानी सारा जम जाने पर लोमड़ी उस भूरी शेइका को खा ही जाती परंतु हुआ कुछ और ही। खरगोश अपनी टेढ़ी आँखों से सब कुछ देखे जा रहा था।

सवेरे का समय था। खरगोश अपनी माँद में से कूदकर बाहर आया—उसे भोजन करना था और बाकी खरगोशों के साथ खेलना भी था। कड़ाके का पाला पड़ रहा था। अपने आपको गरमाने के लिए खरगोश एक-दूसरे के पंजों के साथ खेल रहे थे। ठंड तो थी मगर मजा भी आ रहा था।

अचानक कोई चिल्लाया—

''भाई लोगो, अपने को बचाओ''

वास्तव में ही खतरा बिल्कुल नाक के सामने आ गया था। जंगल के किनारे पर एक बूढ़ा शिकारी कमर झुकाए खड़ा हुआ था जो स्की में चलकर चुपके से बिल्कुल पास तक आ गया था और अब मौके की तलाश में था कि किस खरगोश पर गोली चलाऊँ। सबसे बड़े खरगोश की ओर देखते हुए शिकारी ने मन-ही-मन सोचा, 'वाह! बुढ़िया के लिए बड़ा बढ़िया रोएँदार फ़रकोट बनेगा।'

शिकारी ने अपनी बंदूक से निशाना भी साध लिया था कि इतने में खरगोशों ने उसे देख लिया और वे पूरी रफ्तार से जंगल की तरफ भाग गए। बूढ़े शिकारी को गुस्सा आ गया और वह बोला—

''बड़े चालाक निकले, अभी मैं तुम्हें मजा चखाता हूँ।... मूर्ख कहीं के, समझते नहीं हैं कि बुढ़िया फरकोट के बिना रह नहीं सकती है। ठंड से अकड़ जाएगी।... कितना भी भाग लो, तुम इस अकीन्तिच को धोखा नहीं दे पाओगे। अकीन्तिच तुमसे ज्यादा चालाक सिद्ध होगा।...मुझे बुढ़िया ने आदेश दे रखा है, ''देखो, बिना फरकोट के घर वापस मत आना। तुम हो कि कूदने-फाँदने में लगे हो।''

शिकारी खरगोशों के पद-चिन्हों के पीछे-पीछे उन्हें ढूँढता गया परंतु खरगोश तो जंगल में इधर-उधर बिखर गए थे। वह बूढ़ा बेहद परेशान हो गया था, मन-ही-मन चालाक खरगोशों को गालियाँ दे रहा था और फिर वह नदी तट पर आराम करने को बैठ गया। वह अपने आपसे बोला, ''ओ बुढ़िया, हमारा फरकोट तो भाग गया है। जरा सुस्ता लूँ, फिर दूसरे किसी खरगोश को ढूँढने निकलूँगा।...

बूढ़ा शिकारी उदास बैठा हुआ था कि उसने देखा कि नदी के किनारे-किनारे एक लोमड़ी चुपके-चुपके चली जा रही है, बिल्कुल ऐसे जैसे कि कोई बिल्ली हो। उसे देख कर शिकारी की खुशी का ठिकाना न रहा, ''हा, हा, हा, वाह! बुढ़िया के फरकोट के लिए गरम कॉलर तो अपने आप ही चला आ रहा है।... हो सकता है कि प्यास लग आई हो इसे, या मछलियाँ पकड़ने का विचार आ गया हो।''

लोमड़ी वास्तव में ही जमी हुई नदी पर चलकर उस जगह तक आ गई थी जहाँ पर भूरी शेइका तैर रही थी। लोमड़ी बर्फ पर आकर बैठ गई थी। बूढ़े शिकारी की नजर कमजोर हो चुकी थी और लोमड़ी की वजह से उसे भूरी शेइका दिखाई ही नहीं पड़ी। लोमड़ी पर निशाना साधते हुए शिकारी सोच रहा था, ''गोली इस तरह चलानी होगी कि कॉलरवाला हिस्सा खराब न हो। अगर गलत निशाना लगने से कॉलर में ही छेद हो गया तो बुढ़िया गाली देने बैठ जाएगी।...सब जगह कौशल की जरूरत पड़ती ही है। खटमल को मारने के लिए भी कौशल चाहिए।''

बूढ़ा शिकारी बहुत देर तक निशाना साधता रहा कि कॉलरवाला हिस्सा कौन-सा है। आखिरकार गोली की सनसनाहट हुई। शिकारी ने देखा कि गोली के धुएँ के अंदर से कोई चीज निकलकर बर्फ पर कूदी। शिकारी पूरी रफ्तार से पानी की तरफ दौड़ा। दौड़ते-दौड़ते वह दो बार गिर भी गया था और जब नदी के बीच में पानी के पास पहुँचा तो उसने अपने हाथ लटका दिए—वहाँ तो कॉलरवाली लोमड़ी थी ही

नहीं, वहाँ तो भयभीत भूरी शेइका पानी में तैरती दिखाई दे रही थी।

अपने हाथ फैलाकर शिकारी ने आह भरते हुए कहा—

''वाह, क्या बात है! पहली बार देख रहा हूँ कि लोमड़ी बदलकर नीलसर बन गई है। बहुत ही चालाक जानवर है लोमड़ी।''

''बाबा जी, लोमड़ी तो भाग गई है।'' भूरी शेइका ने बात स्पष्ट की।

''भाग गई? बुढ़िया, देखा, तूने अपने फरकोट के कॉलर का हाल।... अब मैं क्या करूँ? यह तो पाप हो गया है। अच्छा, तू यहाँ क्या कर रही है, मूर्ख नीलसर?''

''बाबा जी, मैं बाकी नीलसरों के साथ उड़कर नहीं जा सकी क्योंकि मेरा एक पंख टूटा हुआ है।...''

''ओफ, बड़ी मूर्ख है!... यहाँ तो तू ठंड से अकड़ जाएगी या लोमड़ी तुझे खा जाएगी, हाँ!...''

काफी देर तक सोचने के बाद बूढ़े शिकारी ने सिर हिलाया और फिर अपना फैसला उसे सुनाया—

''हम ऐसा करते हैं कि मैं तुझे अपने पोतों के पास ले चलता हूँ। वो बहुत खुश हो जाएँगे।...वसंत ऋतु आने पर तू बुढ़िया के लिए अंडे दिया करना और चूजों को भी सेना। मैं ठीक कह रहा हूँ ना? ठीक ही तो है, मूर्ख कहीं की!''

बूढ़े शिकारी ने भूरी शेइका को पानी में से निकाला और अपनी काँख में रखकर घर को चल दिया। वह अपने आपको समझाए जा रहा था, ''मैं बुढ़िया से कुछ नहीं कहूँगा। उसका फरकोट और कॉलर अभी कुछ समय और जंगल में घूम लें तो अच्छा रहेगा। असली बात तो यह है कि छोटी नीलसर को देखकर पोतों को कितना अच्छा लगेगा।''

यह सारा दृश्य खरगोश देख रहे थे और मारे खुशी के हँसे भी जा रहे थे। कोई बात नहीं, बुढ़िया तो फरकोट के बिना भी चूल्हे के ऊपर रह लेगी।

आक-बोज़ात

बुख़ारबाइ जवान और मूर्ख था। केवल आलसी ही ऐसा होता है जो किसी मूर्ख व्यक्ति को नाराज नहीं कर सकता है। यह बात बुख़ारबाइ पर भी लागू होती थी। जब उसके पिता की मृत्यु हुई थी तब उसके पास सब कुछ पर्याप्त मात्रा में था—नया तंबू-घर था, ढेर सारे घोड़े थे और बहुत सारी भेड़ें भी थीं। जवान बुख़ारबाइ ऐसा सोचता था कि पिता की संपत्ति तो कभी खतम होने वाली नहीं है। इसलिए वह अपने दोस्तों के साथ मौज-मस्ती करने लगा। बाकी सब तो काम करते थे लेकिन बुख़ारबाइ बस मस्ती ही करता था और कहता था, ''मैं काम क्यों करूँ? मेरे पास सब कुछ तो है। जो गरीब हैं, उन्हें काम करना चाहिए।''

''ओफ़, बुख़ारबाइ, तू ठीक नहीं कर रहा है।'' बुख़ारबाइ की माँ उससे ऐसा कहकर बस सिर हिला देती थी।

बुख़ारबाइ जवान था और अपने बारे में सोचता था किऔरतों को कोई समझ नहीं होती है क्योंकि हमेशा अपने-अपने घरों में बैठी रहती हैं और उन्हें सिर्फ घोड़ी का दूध दुहना आता है। बुख़ारबाइ का जवान दिल उसी तरह मस्ती में ही रहा।...कितनी भी मस्ती क्यों कर ले, बुख़ारबाइ को लगता कि कम हुआ है। अमीर लोगों के मित्र बहुत होते हैं। बुख़ारबाइ के भी बहुत सारे दोस्त थे। सब एक-से-एक बढ़कर थे। उसके साथ मौज-मस्ती करते थे, उसके यहाँ गोश्त खाते थे, उसकी ऊँटनी का दूध पाते थे और उसकी तारीफ करते जाते थे। पर मौज-मस्ती के लिए तो और भी रुपए चाहिए थे। धीरे-धीरे करके बुख़ारबाइ ने अपनी बूढ़ी माँ से छिपाकर पिता की धन-दौलत उड़ानी शुरू कर दी। जब बूढ़ा होगा, तब खुद जमा कर लेगा। धीरे-धीरे करके सारी दौलत समाप्त हो गई। तब बुख़ारबाइ ने मवेशियों को बेचने की सोची पर माँ की वजह से रुक गया—बुढ़िया रोने लगेगी और सब लोगों के पास जाकर शिकायत करने लगेगी। तब बुख़ारबाइ ने गाँव के लोगों से उधार माँगना शुरू कर दिया। उसे लोग उधार दे देते थे, जैसे अमीर लोगों को दे देते हैं। पड़ोसी उधार दिए जा रहे थे और बुख़ारबाइ लिए जा रहा था। पहले तो गिनकर लेता था, फिर गिनना भी छोड़ दिया। क्या फर्क पड़ता है—देनेवाला तो भूलेगा नहीं।

लगभग दो साल बाद एक पड़ोसी ने पूछा—

''हमारा उधार कब लौटाओगे?''

''लौटा दूँगा जब मेरे पास रुपए होंगे। अभी तो मेरे पास नहीं हैं।''

एक पड़ोसी ने उधार वापस माँगा तो बाकी पड़ोसी भी पीछे पड़ने लग गए 'उधार लौटाओ, उधार लौटाओ।' पर वह लौटाता क्या, जब उसके पास कुछ था ही नहीं। बुख़ारबाइ सोच में पड़ गया, पर उसने देरी कर दी थी। क्या किया जाए—माँ के सामने तब कुछ स्वीकार करना पड़ा। बूढ़ी माँ बुरी तरह रो पड़ी और कहने लगी—

''बुख़ारबाइ, मैं तुझसे कहती थी ना?... आह, बुख़ारबाइ, तू कैसे जिंदगी काटेगा? मैं तो बूढ़ी हो गई हूँ, मेरी जिंदगी तो कट गई है। तुझे तो अभी पूरा जीवन काटना है।''

तब बुख़ारबाइ ने अपने पुराने दोस्तों से सहायता माँगी परंतु खुद उनके पास ही कुछ नहीं था। अगर किसी के पास था भी तो वह अपने लिए छिपाया हुआ था।

सबको बुख़ारबाइ पर दया तो आ रही थी।...'ये कैसे पड़ोसी हैं

जो उधार वापस माँगने के लिए पीछे पड़े हुए हैं। कुछ समय के लिए रुक तो सकते थे।' संक्षेप में कहा जाए तो अच्छी बातें तो सभी लोग कर रहे थे पर कोई भी एक कौड़ी तक देने को तैयार नहीं था। बुख़ारबाइ की हालत बहुत बुरी हो गई थी, बहुत ही बुरी, खास कर तब जब पड़ोसियों ने 'बी' (गाँव का मुखिया—अनु.) से उसकी शिकायत कर दी और उसे पूरा हिसाब दिखा दिया। 'बी' ने जवान बुख़ारबाइ को अदालत में बुलवाया और उससे पूछा—

"अपना उधार स्वीकार करते हो क्या?"

"स्वीकार करता हूँ।"

"अगर उधार को स्वीकार करते हो तो उसे लौटाओ भी।"

"मेरे पास कुछ है ही नहीं।"

तब अदालत के अनुभवी काज़ियों ने आपस में सलाह करके यह फैसला किया कि बुख़ारबाइ की सारी जायदाद को बेच दिया जाए। निश्चय ही, जवान लड़के पर दया तो आ रही थी, पर किया भी क्या जा सकता था। 'बी' को भी उस पर दया आ रही थी लेकिन वह भी कुछ नहीं कर सकता था—मूर्खता को सुधारना आसान नहीं होता है।

काज़ियों ने बुख़ारबाइ के घर में आकर उसके पिता की संपत्ति को बेचना शुरू कर दिया। उस संपत्ति के मुख्य खरीदार वही साहूकार निकले जिनके पास खूब रुपया था। बुख़ारबाइ के पिता ने तो यह धन-दौलत बहुत समय लगाकर जोड़ी थी जो एक ही दिन में धुएँ की तरह उड़ गई। एक साहूकार भेड़ों को ले गया, दूसरा तंबू-घर को ले गया, तीसरे और चौथे ने घोड़ों के झुंड को आपस में बाँट लिया। जैसा कि किसी भी नीलामी में होता है, सारा माल बहुत सस्ते में बिक गया। साहूकार सस्ता माल ले उड़े बल्कि आपस में झगड़ा भी करने लगे थे। हर कोई ज्यादा-से-ज्यादा माल ले लेना चाहता था।



बुख़ारबाइ ने काज़ियों से पूछा—

"मेरे पास क्या रह जाएगा?"

"तेरे पास दो मजबूत हाथ हैं। पहले तू जवान और मूर्ख था। अब तुझे जरूरत है समझदार बनने की।... पैगंबर ने ठीक ही कहा है, "मेरे लिए गरीबी ही वरदान है।"

जवान बुख़ारबाइ का सिर लटक गया। पिता की जायदाद चले जाने का उसे दुख हो रहा था।... परंतु उसने बहस नहीं की क्योंकि 'बी' और काज़ियों ने उचित न्याय किया था। परंतु जब आखिरी, सफेद बछेड़े (अश्व-शावक) की बारी आई, तब उससे रुका नहीं गया। यह बहुत दुर्लभ नस्ल का घोड़ा था, उसमें बहुत पुराना खून बह रहा था। बुख़ारबाइ के पिता के लिए वह सबसे कीमती घोड़ा था। साहूकारों को भी उस घोड़े की समझ थी और सब-के-सब उसी के पीछे पड़ गए—हर कोई उसे ही प्राप्त करना चाहता था।

बुख़ारबाइ ने घोषणा की—

''नहीं, मैं यह बछेड़ा आप लोगों को नहीं दूँगा। आप लोगों ने सब कुछ तो ले लिया है, फिर भी मैं चुप रहा। पर यह बछेड़ा मैं किसी को भी नहीं दूँगा।''

सब-के-सब फिर से 'बी' की अदालत में गए। 'बी' ने सबकी बात ध्यान से सुनी और फिर कहा—

''साहूकारो, आप लोगों ने जितना उधार दिया था उससे अधिक आपको मिल गया है। अब आप इसकी आखिरी चीज भी झपट लेना चाहते हो। क्या कोई किर्गीज़ बिना घोड़े के रह सकता है? क्या आपकी कोई अंतरात्मा नहीं है?''

बुख़ारबाइ खड़ा-खड़ा आँसू टपका रहा था। वह अपनी मूर्खता पर शर्मिंदा हो रहा था जिसके कारण वह ऐसी अपमानजनक स्थिति तक आ पहुँचा था। 'बी' को दया आ गई और उसने फैसला किया कि यह सफेद बछेड़ा उसी के पास रहेगा।

'बी' ने बुख़ारबाइ को सीख देते हुए कहा—

''यह याद रखना कि इस बछेड़े का जन्म इसेक-किर्गान अर्थात् सांध्य-ज्योति की हड्डियों से हुआ है—यह वह सांध्य-ज्योति है जिसे स्तपी की घुड़दौड़ में कोई भी घोड़ा हरा नहीं पाया था। इस बछेड़े की रक्षा आँख की पुतली की तरह करना। अकेले इसकी कीमत तेरी सारी संपत्ति के बराबर है।''

बुख़ारबाइ ने कृपालु 'बी' के प्रति आभार प्रकट किया। फिर से उसके आँसू निकल आए। पर इस बार ये खुशी के आँसू थे। उसकी आशा बची रह गई थी।...अगर साहूकारों की चलती तो वे उससे स्तपी और आकाश तक छीन लेने को तैयार थे।

2

जवानी में मिली लज्जा और बूढ़ी माँ के अलावा बुख़ारबाइ के पास कुछ भी नहीं बचा था। बूढ़ी माँ अकेले में चुपचाप रोती रहती थी

जिससे कि बेटे को बुरा न लगे जो वैसे ही अपनी करतूतों का फल झेल रहा था। उसने बस इतना कहा—

''अमीरी और गरीबी दोनों को ही देनेवाला अल्लाह ही है। निराश मत हो, बेटे।...तू तो अभी जवान है, तू सुधर सकता है।...मेरी तुझसे अंतिम सलाह यह है—इस गाँव से निकलकर जितना दूर हो सके चले जा। जहाँ पर लोग तुझे धनवान के रूप में जानते थे, वहाँ पर दरिद्र बन कर रहना अच्छा नहीं है। यही मेरी तुझसे आखिरी सलाह है, बुख़ारबाइ। मैं फिर से अपनी बहन के पास चली जाऊँगी। दामाद भला आदमी है, वह बुढ़िया को बाहर नहीं निकालेगा।''

बुख़ारबाइ फिर से इस बात पर बहुत शर्मिंदा हुआ कि अपनी सगी माँ को खिला सकने की स्थिति में तक नहीं है। जवानी की बेवकूफी की बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ रही थी उसे।

बेटे से विदा होते समय माँ ने कहा—

'' बुख़ारबाइ, मैं तुझे एक और सलाह दे रही हूँ। तेरे इस बछेड़े की कीमत कोई नहीं जानता है। यह बहुत दुर्लभ नस्ल का है।...इसकी रक्षा करना और इसके बदले में कुछ भी मत लेना, चाहे जो कुछ भी दिया जा रहा हो। यह घोड़ा नहीं, स्तपी की हवा बनेगा, धनुष से छोड़ा हुआ तीर बनेगा। तेरे पिता ने इसे आक-बोज़ात नाम दिया था जिसका मतलब है 'सितारा'।

बुख़ारबाइ ने चुपचाप अपनी माँ के चरणों का स्पर्श किया। इतने सारे लोगों में से उसका भला चाहनेवाली अकेली माँ ही थी।

बुख़ारबाइ ने अपना गाँव रात के अँधेरे में छोड़ा जिससे कि उसके अंतिम अपमान और आँसुओं को कोई देख न पाए। वह खुद पैदल जा रहा था और साथ में उसने अपने बछेड़े को ले रखा था जिसकी जीन कसी हुई थी। यह बहुत अच्छी 'श्वेत' नस्ल का शावक था। इसी खून के अन्य घोड़ों से वह इस मायने में भिन्न था कि उसके माथे

पर काले रंग का सितारा बना हुआ था, और इसीलिए बुख़ारबाइ के पिता ने उसका नाम 'आक-बोज़ात' रखा था। बुख़ारबाइ के सिर के ऊपर फैला हुआ विस्तृत आसमान नीले गुब्बारे जैसा दिखाई दे रहा था। उसके सामने दूर-दूर तक स्तपी की भूमि कालीन की तरह फैली हुई थी। यह सब देखकर बुख़ारबाइ सोचने लगा कि क्या मुझे रहने को कोई जगह नहीं मिल पाएगी?

बुख़ारबाइ को चलते-चलते एक हफ्ता हो गया, दो हफ्ते हो गए, तीसरा हफ्ता भी निकल गया। उसने कई सारे गाँव पार कर लिए थे। अब वह ऐसी जगह आ पहुँचा था जहाँ उसे पहचाननेवाला कोई नहीं था। इससे बुख़ारबाइ को तसल्ली हुई। जवानी में दुख जल्दी भुला दिया जाता है। बुख़ारबाइ त्सात्सगाइ नाम के एक धनी किर्गीज़ के पास एक साधारण गड़रिये की नौकरी करने लगा। उसने अपने लिए बस एक ही शर्त मनवाई थी कि उसका बछेड़ा दूसरे घोड़ों के साथ ही चरा करेगा। त्सात्सगाइ इसके लिए सहमत हो गया था।

"ठीक है, चरने दो। स्तपी बहुत बड़ी है। इसमें सबके लिए जगह है।... पर तुम्हारा यह बछेड़ा बहुत घटिया है, इसकी टाँगें कितनी पतली हैं।"

बुख़ारबाइ चुप रहा। त्सात्सगाइ को घोड़ों की पहचान नहीं थी। इतना लम्बा रास्ता चलकर आने से आक-बोज़ात की हालत पस्त हो रही थी और उसकी सूरत वास्तव में ही दयनीय दिखाई दे रही थी। त्सात्सगाइ तो मन में यह सोचे बैठा था कि जब बछेड़ा बड़ा होकर घोड़ा बन जाएगा, तब गड़रिया अपने घोड़े पर आया-जाया करेगा। हर कोई अपना-अपना फायदा देखता है।

यह गाँव बहुत बड़ा था। त्सात्सगाइ के पास घोड़ों के तीन झुंड थे। जब बुख़ारबाइ चरवाहा बनकर निकला, तब उसे अच्छा ही लगा। आज उसने पहली बार अपने हाथ की कमाई खाई थी।

बुख़ारबाइ दिन भर घोड़े पर सवार होकर घोड़ों के झुंड पर नजर रखता था। उसे अच्छी तरह समझ आ गया कि अपना पेट खुद पालना आसान नहीं है। त्सात्सगाइ बहुत कंजूस था और अपने चरवाहों को वह खाने को बस उतना ही देता था कि वे भूख से मर न जाएँ। पीठ पीछे चरवाहे अपने कंजूस मालिक की हमेशा बुराई ही किया करते थे परंतु उसके सामने अपना काम चुपचाप किया करते थे—लगभग सभी गरीब ऐसा ही करते हैं जिन्होंने गरीबी के कारण आत्म-सम्मान खो दिया होता है।

गड़रिये का काम मुश्किल तो नहीं होता है, उसमें, बस, एक ही खराबी है कि न दिन में, न रात में कोई चैन नहीं है। गड़रिये आधी नींद ही सोते थे। बुख़ारबाइ शीघ्र ही अपनी नई स्थिति का अभ्यस्त हो गया था और बाकी गड़रियों से उसमें कोई अंतर नहीं रह गया था—वह भी उन्हीं का जैसा नमदे का टोप और फटा लबादा पहनने लगा था।

वह अपने भाग्य को लेकर रोता नहीं था और इस बात से संतुष्ट था कि उसके पास आक-बोज़ात है, औरों के पास तो वह भी नहीं है। बाकी चरवाहे तो बुख़ारबाइ को अपने सफेद आक-बोज़ात की सेवा करते देखकर हँसते थे और त्सात्गाइ तो सिर्फ आश्चर्य ही कर सकता था। बुख़ारबाइ अपने घोड़े को कई बार नहलाता था, उस पर कंघी करता था और उसकी गर्दन के बालों को खूब सँवारता था। धीरे-धीरे उसने अपने घोड़े को दौड़ना भी सिखाना शुरू कर दिया। आक-बोज़ात अपने मालिक के पीछे-पीछे वैसे ही जाता था जैसे कि कुत्ते जाते हैं और वैसे ही उसका कहना भी मानता था। बुख़ारबाइ उसके साथ ऐसे बातें करता था जैसे कि वह कोई मनुष्य हो।

"आक-बोज़ात, यहाँ हमें कोई जानता नहीं है।...अच्छा ही है। तेरे इस मालिक ने बहुत सारी बेवकूफियाँ कर रखी हैं।...कोई बात नहीं।...जल्दी ही सुधार लेंगे।"

बुख़ारबाइ का यह सोचना गलत था कियहाँ उसे पहचाननेवाला कोई नहीं है। त्सात्सगाइ की एक सुंदर बेटी थी जिसका नाम था मेचित। वह विवाहयोग्य थी। लड़कियों का ध्यान ऐसी बातों की ओर भी चला जाता है जिधर जाना नहीं चाहिए। यह बात मेचित पर भी लागू होती थी। जब चरवाहे घोड़ों को ले जा रहे होते थे, तब उसकी नजर नए चरवाहे की ओर चली जाती थी। उसे ऐसा लगता था कि घोड़े पर बैठने का उसका ढंग औरों से अलग है। किर्गीज़ लड़कियाँ बड़ी हिम्मती होती हैं और बाहर सिर ढके बिना जाती हैं। मेचित एक दिन बुख़ारबाइ से मिली और उसने उससे कहा—

"ओ चरवाहे, जरा अपने हाथ तो दिखा।"

बुख़ारबाइ असमंजस में पड़ गया। वह इस आदेश की अनसुनी नहीं कर सकता था। लड़की ने उसके हाथों को ध्यान से देखा, उसकी आँखों में चतुराई से झाँका और बोली—

" बुख़ारबाइ, तू कोई साधारण गड़रिया नहीं है।...अभी कुछ समय पहले तक तेरे हाथ कोमल-कोमल थे, स्त्रियों जैसे। जब तू घोड़े पर बैठकर जा रहा होता है, तब भी दिखाई दे जाता है कि... ।"

बुख़ारबाइ ने निस्संकोच उत्तर दिया—

"हाँ, मैं साधारण व्यक्ति नहीं हूँ। यह सारी स्तपी और यह सारा आसमान मेरा है।...मैं दिन भर स्तपी में घूमता हूँ, रात-रात भर आकाश की ओर देखता रहता हूँ—मुझे कोई रोकनेवाला नहीं है।"

मेचित हँसती हुई बोली—

"वाह, क्या कहने, बहुत बड़ी धन-दौलत है। इसे किसे बाँटेगा?"

"मेरा कोई नहीं है।"

"तुझसे प्रेम करनेवाली कोई लड़की तो होगी?"

"गरीब चरवाहों से लड़कियाँ प्रेम नहीं करती हैं। वैसे मैं खुद अपने आक-बोज़ात से प्रेम करता हूँ।"

"घोड़े से? हा-हा-हा!...बहुत छिपाऊ है। ठीक है, देखते हैं।"

बुख़ारबाइ का ध्यान इस ओर जाने लगा कि मेचित हर बार उसे बड़े गौर से देखती रहती है। उसे देखकर हँसने लगती है। उसके ऐसा करने पर बुख़ारबाइ को गुस्सा भी आने लगा था। किस बात पर हँसती है?...बुख़ारबाइ ने भी मालिक की बेटी की ओर देखना शुरू कर दिया। वह जितना ही उसकी ओर देखता, उतना ही उसकी ओर आकर्षित होता जाता था। एक जवान दिल दूसरे जवान दिल की ओर झुकता जा रहा था।

अपने आपको नसीहत देते हुए बुख़ारबाइ बोला—

"बुख़ारबाइ, समझ से काम ले।... तू बहुत बेवकूफियाँ कर चुका है।... त्सात्सगाइ अपनी बेटी के लिए कम-से-कम एक सौ रूबल मेहर माँगेगा और ऊपर से तीन सौ भेड़ें भी लेगा। अपनी हँसी मत उड़वा, बुख़ारबाइ।...तुझ जैसे भाग्यहीन कंगाल को तो सुंदर लड़कियों के बारे में सोचना तक नहीं चाहिए।"

शाम के समय जब बुख़ारबाइ का मन उदास हो जाता, तब वह आग के पास बैठकर उसी समय रचा अपना गीत गुनगुनाने लगता था—

हँसती है मन-ही-मन,
उदास है मेरा मन।
स्तपी में ओझल हो जाऊँगा
तेज घोड़े पर, हवा की तरह।
रोती रह जाएगी वह यहीं-की-यहीं।

3

इस तरह तीन साल निकल गए। बहुत लंबे थे ये तीन साल। तीन बार स्तपी की भूमि में वसंत के फूल खिले थे, तीन बार स्तपी की घास गर्मी की तेज धूप से जल गई थी, और तीन बार स्तपी की भूमि बर्फ

से ढक गई थी। जाड़े के दिनों में, विशेषकर तब जब बर्फीली आँधी आती थी, गड़रियों को बहुत मुश्किल होती थी। कई बार बुखारबाइ की हालत ऐसी हो गई थी कि वह ठंड के मारे अकड़कर मर भी सकता था। परंतु उसने धैर्यपूर्वक ठंड को झेला क्योंकि गरीबों को अपने भाग्य पर शिकायत करने का हक नहीं है। उसके हाथ असली चरवाहों के जैसे कठोर हो गए थे, चेहरे पर हवा के थपेड़ों का प्रभाव दिखाई देने लगा था और अब मेचित ने उसकी ओर ध्यान देना छोड़ दिया था। परंतु बुख़ारबाइ बहुत प्रसन्न था क्योंकि उसका बछेड़ा अब बड़ा हो गया था। अच्छा-खासा बड़ा हो गया था। कितना समझदार हो गया था। उसने कितने धैर्य के साथ उसे शिक्षित किया था, बहुत सोच-सोच कर। बाकी चरवाहे इस अजीबो-गरीब इंसान पर फिर से हँसने लगे कि अपने घोड़े की देखभाल इस तरह करता है जैसे किवह कोई बहू हो। वह घोड़ा था भी तो गजब का—कद का ऊँचा, टाँगें लंबी-लंबी, सिर छोटा और गर्दन भी लंबी-लंबी। जब बुख़ारबाइ पहली बार उस पर चढ़कर निकला, तब मारे खुशी के उसका दिल धड़क उठा—वह तो घोड़ा क्या था, हवा ही थी।

बुख़ारबाइ ने मन में सोचा, 'एक साल और रुक जाते हैं, आक-बोज़ात के और बड़ा होने तक। तब मैं सौदागरों के कारवाँओं के लिए पथ-प्रदर्शक का काम करना शुरू कर दूँगा।...यह काम थोड़ा आसान है और अपनी मर्जी का भी है। यही ठीक रहेगा। बुख़ारबाइ, जरा धैर्य रख ले। थोड़ा ही इंतजार बाकी है।'

वहाँ से चले जाने का विचार बुख़ारबाइ के मन में बहुत पहले से बैठ चुका था जो उसने बाकी लोगों से छिपा रखा था। बस, एक चीज उसे रोके हुए थी—वह तो चला जाएगा पर मेचित वहीं-की-वहीं रह जाएगी। वैसे, वह तो उसे भूल चुकी थी। परंतु उसकी धधकती काली आँखों को, उसकी कन्या-सुलभ हँसी को, स्तपी की उस सुंदरी के

गर्वीले मुख को वह नहीं भूला था। मात्र यह सोचकर ही वह काँप रहा था कि यह मुख अब किसी और के लिए मुस्कुराएगा तथा कोई और ही उसे अपने तंबू में ले जाएगा।

मेचित के चाहनेवाले कम नहीं थे। वे स्तपी की दूर-दूर की जगहों से आ रहे थे। बूढ़े त्सात्सगाइ ने मेचित को बहुत ऊँचा आँक रखा था पर उसे समझ नहीं आ रहा था कि अपनी बेटी के लिए कितना मेहर माँगा जाए। समय निकलता जा रहा था और बेटी से जुदा होने का वक्त पास आता जा रहा था—कन्या-अवस्था थोड़ी ही होती है। तब त्सात्सगाइ ने दूल्हे का चयन करने के लिए घुड़दौड़ आयोजित करने का फैसला किया। जो भी घुड़दौड़ में पहला आएगा, अल्लाह की मर्जी से वही मेचित का दूल्हा बनेगा। सभी चाहनेवाले इस निर्णय से प्रसन्न हुए क्योंकि हर किसी को अपने-अपने घोड़े पर भरोसा था। सभी के पास एक से एक बढ़िया घोड़े थे। चाहनेवालों को उत्साहित करने के लिए त्सात्सगाइ ने सबके सामने यह घोषणा की—

"मुझे कोई फर्क नहीं पड़ेगा, चाहे जो भी जीते।...कोई साधारण चरवाहा भी मेचित को ले जा सकता है। जैसी अल्लाह की मर्जी होगी, वैसा ही होगा।"

इस घुड़दौड़ की खबर सारी स्तपी में फैल गई। सभी लोगों के मुँह पर घुड़दौड़ की ही बात थी। स्तपी में बहादुरों की कमी नहीं थी और हर कोई सोच रहा था कि मेचित उसी को मिलेगी।

आखिरकार घुड़दौड़ की तिथि की घोषणा भी हो गई। त्सात्सगाइ के गाँव में आनेवाले लोगों का ताँता लग गया। सारी स्तपी लोगों से भर गई। इस अनोखे प्रदर्शन को देखने बूढ़े और जवान सभी चले आ रहे थे। मेचित जैसी सुंदरी किसको मिलेगी? अल्लाह ऐसा दुर्लभ सुख किसे प्रदान करेगा? मैदान में बुख़ारा का बना हरे रंग का वितान (शामियाना) लगाया गया था। अलग-अलग गाँवों के किर्गीज़ बुज़ुर्ग

और काज़ी उस शामियाने में आकर बैठे। स्वयं 'बी' भी आज का प्रदर्शन देखने आया था। मेचित के चाहनेवाले अपने-अपने अद्भुत घोड़ों में वहाँ आकर पधारे, बहुत सारे साधारण जिगीत (घुड़सवार) भी आए थे और सबसे अंत में पहुँचा बुख़ारबाइ जो अपने आक-बोज़ात पर सवार होकर आया था।

सब लोग पूछने लगा—

"सफेद घोड़े में यह कौन आया है?"

"यह मेरा चरवाहा है।" त्सात्सगाइ ने अनमने भाव से उत्तर दिया। उसे इस बात का बुरा लगा था कि मेचित के इन चाहनेवालों के साथ एक साधारण गड़रिया प्रतिस्पर्धा करना चाहता है। उसने कहा, "बेकार में अपने घोड़े को तड़पाएगा।"

सभी अश्व-धावक वितान के सामने आकर पंक्ति बनाकर खड़े हो गए। जैसे ही 'बी' ने संकेत दिया, सभी घुड़सवार दौड़ पड़े और सबसे बाद में दौड़ा बुख़ारबाइ। वह बहुत देर तक अनिश्चय में था कि घुड़दौड़ में भाग ले या नहीं क्योंकि उसका घोड़ा आक-बोज़ात अभी तरुणावस्था में था। उसकी बुद्धि तो कह रही थी कि भाग नहीं लेना चाहिए परंतु उसकी जवानी बुद्धि पर हावी हो गई। मुख्य शामियाने से थोड़ी दूरी पर महिलाओं के लिए एक अलग शामियाना लगाया गया था जिसमें बुख़ारबाइ ने मेचित को बैठा हुआ देख लिया था। मेचित का वक्ष सोने के सिक्कों से भरा हुआ था जिनकी मोहक खनखनाहट उसके कानों में पड़ रही थी। जब मेचित ने सफेद घोड़े पर बैठे बुख़ारबाइ को देखा तब तो वह और भी अधिक प्रसन्न होकर मुस्कुरा दी थी। अधिक-से-अधिक चाहनेवालों को देखकर तो उस सुंदरी कन्या का गर्व बढ़ता जा रहा था।

घुड़दौड़ कुल चालीस कोस की थी—आधा एक तरफ और आधा वापसी। चाहनेवालों के घोड़े बहुत बढ़िया थे और वे बहुत दूर

तक आगे निकल गए। दौड़ के पहले हिस्से में ही साधारण घुड़सवार तो पिछड़ने लगे थे। बुख़ारबाइ ने अपने आक-बोज़ात घोड़े की लगाम पकड़ रखी थी। घोड़े का उत्साह बढ़ता जा रहा था और बुख़ारबाइ को लग रहा था कि उसमें काफी ऊर्जा है। वापसी दौड़ में बुख़ारबाइ ने अपने कुलीन घोड़े को धीरे-धीरे करके उसकी इच्छानुसार दौड़ने दिया और तब वह घोड़ा रफ्तार बढ़ाता हुआ हवा से बातें करने लगा। अरे, वह तो एक के बाद दूसरे प्रतिद्वंद्वी को पीछे छोड़ता चला जा रहा था!... साधारण घुड़सवार तो सब-के-सब पीछे ही रह गए थे, आगे सिर्फ तीन चाहनेवाले ही पूरी रफ्तार से दौड़े चले जा रहे थे। सुनहरे रंगवाले तेकिन जाति के घोड़े में बैठा एक घुड़सवार तो बहुत आगे पहुँच गया था। आक-बोज़ात अपनी गति बढ़ाए जा रहा था और उसने दो घुड़सवारों को पीछे छोड़ दिया था। अब एक ही घुड़सवार उससे आगे रह गया था। बुख़ारबाइ को ऐसा लग रहा था जैसे कि उसके नीचे की जमीन उड़ी चली जा रही हो। दूर लोगों की रंग-बिरंगी भीड़ और शामियानों के हरे-हरे चिह्न दिखाई पड़ रहे थे। अब तेकिन घुड़सवार और आक-बोज़ात के बीच प्रतिस्पर्धा शुरू हो गई थी। अब तो आक-बोज़ात लक्ष्य से थोड़ी ही दूर रह गया था और बुख़ारबाइ के कानों में भी सुनाई पड़ रहा था कि उस घुड़सवार की साँस कितनी भारी होती जा रही है। अब तो दोनों कंधे से कंधा मिलाकर दौड़ रहे थे।... बुख़ारबाइ का तो दिल बैठा जा रहा था। दो कोस से भी कम की दूरी बाकी रह गई थी। तेकिन घुड़सवार से लोहा लेना आसान नहीं था। बुख़ारबाइ ने आक-बोज़ात की गर्दन पर थपकी दी, काठी के हरने के पास झुक गया ताकि घोड़े की गतिशीलता में कोई रुकावट न आए और बहुत ऊँचे स्वर में चीख पड़ा। उसी क्षण आक-बोज़ात इतनी तेज दौड़ पड़ा जैसे कि किसी ने अपने मजबूत हाथों से धनुष से तीर छोड़ा हो, जैसे कि वह स्तपी का बवंडर हो।

तभी हजारों लोगों का उत्साहित स्वर बुख़ारबाइ के कानों तक पहुँचा जो उसकी जीत से आह्लादित हो रहे थे।

सभी चाहनेवालों को पीछे छोड़कर बुख़ारबाइ प्रथम आया। सारे लोग आक-बोज़ात के पास दौड़े आए। उन्हें समझ में नहीं आ रहा था कि उसे किस तरह पुचकारें। महिलाओं ने तो उसे चूम ही लिया था। ऐसा तेज घोड़ा उन्होंने स्तपी में कभी नहीं देखा था।

'बी' ने कहा—

''बुख़ारबाइ, तेरी जीत हुई है।''

त्सात्सगाइ ने चुपचाप सहमति प्रकट की—

''हाँ, ठीक है। मेचित इसी की है, अगर यह मेहर ले आए।...खैर, अभी तो ले जा सकता है। मैं अपने वचन से मुकर नहीं रहा हूँ। सभी चाहनेवालों ने मुझे मेहर देने का वचन दिया था।''

बुख़ारबाइ ने अपने आप को ऐसा अभागा कभी भी महसूस नहीं किया था जैसा कि आज—अपनी विजय के दिन—महसूस कर रहा था। सब लोग उस पर ईर्ष्या कर रहे थे और वह अपने आपको ही कोस रहा था।...ठीक ही तो है कि निर्धनता के अभिशाप को तेज-से-तेज घोड़े से भी दूर नहीं किया जा सकता है। और तो और गर्वीली मेचित तक आकर कुलीन घोड़ी आक-बोज़ात के गले से लग गई थी।

बुख़ारबाइ ने कहा—

''अलविदा, मेचित!''

मेचित ने कोई उत्तर नहीं दिया, उसने बस अपनी गर्वीली आँखें नीचे को झुका लीं।

4

इस घुड़दौड़ ने बुख़ारबाइ को अभागा बना दिया था। कठोर श्रम से प्राप्त हुआ उसके मन का चैन चला गया था। अब साधारण गड़रियों

का जीवन उसे कठिन प्रतीत होने लगा। ऊपर से लोग उससे ईर्ष्या कर रहे थे। वह तो मेचित के बारे में ही सोचता रहता था, अनोखी आँखोंवाली सुंदरी कन्या मेचित के बारे में।

त्सात्सगाइ ने उससे कहा—

''मैं तुझे एक साल की मोहलत देता हूँ। मैं अपने वचन पर कायम हूँ। तू मेहर जमा कर ले। अगर एक साल के अंदर जमा नहीं कर पाएगा तो मैं मेचित को दूसरे व्यक्ति को सौंप दूँगा।''

यदि किसी ने बुख़ारबाइ को चाकू मारा होता तो उससे होनेवाली पीड़ा इन शब्दों को सुनकर हुई पीड़ा से कम ही होती। ऊपर से यह कि मेचित उसे देखकर मुस्कुराती जा रही थी। उसे तो आक-बोज़ात पसंद आने लगा था जिसे चारा देने वह अक्सर आने लगी थी। अब तो मेचित को संकोच करने की भी आवश्यकता नहीं थी क्योंकि सब जानते थे किवह उसका मँगेतर बन चुका था।

मेचित ने बड़ी चतुरता से बुख़ारबाइ से पूछा—

''बुख़ारबाइ, क्या तुम मुझसे बहुत प्रेम करते हो?''

''हाँ।''

''क्या आक-बोज़ात से भी अधिक?''

इस प्रश्न ने बुख़ारबाइ को उलझन में डाल दिया और उसे समझ में नहीं आया कि क्या जवाब दे। मेचित खिलखिला कर हँसती हुई वहाँ से भाग गई।

बूढ़ा त्सात्सगाइ तो आक-बोज़ात के बारे में ही सोचे जा रहा था। त्सात्सगाइ के पास सब कुछ था—पाँच सौ घोड़े, तीन हजार भेड़ें, सुंदर कन्या, पर ऐसा फुर्तीला घोड़ा उसके पास नहीं था। आक-बोज़ात का नाम पूरी स्तपी में दूर-दूर तक फैल गया था। किर्गीज़ घुड़सवार इस आश्चर्यजनक घोड़ी को देखने आने लगे। आक-बोज़ात के ऐसे यश ने त्सात्सगाइ की नींद ही उड़ा दी। उसके दिमाग में हमेशा आक-बोज़ात

ही रहता था किकिस तरह उसे बुख़ारबाइ से प्राप्त किया जाए। उस कंजूस बूढ़े ने कई बार बुख़ारबाइ से इस तरह की बातें की थीं—

"बुख़ारबाइ, अपनी घोड़ी मुझे बेच दे। मैं इसके बदले में तुझे बीस घोड़े देने को तैयार हूँ। मेरे घोड़ों के झुंड में से छाँटकर ले ले। साथ में उतनी ही भेड़ें भी ले ले।"

"नहीं।" बुख़ारबाइ दृढ़तापूर्वक हमेशा यही कह देता।

"मैं बदले में सबसे अच्छा तंबू-घर भी तुझे दूँगा।"

"नहीं।"

"मैं तुझे चाँदी के सिक्के भी दूँगा, जितने तेरे दो हाथों में आ सकते हैं, उतने।"

"नहीं।"

"मैं तुझे रेशमी टोपी और रेशम के दो लबादे भी दूँगा।"

"नहीं।"

"मैं तुझे बंदूक, कटार और तलवार दूँगा।..."

"नहीं।"

"तो तुझे क्या चाहिए है?"

"मुझे कुछ भी नहीं चाहिए, त्सात्सगाइ।"

एक दिन स्वयं बुख़ारबाइ ने ही त्सात्सगाइ के पास आकर उससे कहा—

"मुझे वह सब दे दो जिसका आपने वचन दिया है। साथ में मेचित को भी दे दो।"

"हूँ, तो तू मूर्ख नहीं है!... यह तो कभी नहीं हो सकता!"

"आपको तो मालूम ही है किमैं इन सब चीजों के बिना भी मजे में हूँ।"

त्सात्सगाइ को जिद्दी गड़रिये पर गुस्सा आने लगा। अपने घोड़े का बड़ा घमंड हो गया है।...क्या स्तपी में फुर्तीले घोड़ों की कमी है?

त्सात्सगाइ ने अपने आप को समझाने की कोशिश तो बहुत की परंतु उसके दिमाग से इस अद्भुत घोड़े का विचार जाता ही नहीं था। वास्तव में, अब उसे चाहिए ही क्या था—सब कुछ तो उसके पास था। और-तो-और उसे नई बीवी भी नहीं चाहिए थी।...अगर उसके पास आक-बोज़ात हो जाए तो वह स्तपी में उसी में बैठकर जाए और हर घुड़दौड़ में सबको पछाड़ दे। ऐसा घोड़ा दूसरा नहीं है।...उसके बारे में सोचते-सोचते बूढ़ा त्सात्सगाइ दुबला तक हो गया था, उसकी नींद चली गई थी। वह इतना बेचैन हो गया था कि उसे समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करे। उसकी अपनी सम्पत्ति तक उसे सुख नहीं दे पा रही थी।

होते-होते त्सात्सगाइ की हालत वास्तव में ही बिगड़ गई। वह अपने तंबू-घर में पड़ा-पड़ा कराहता रहता था। न कुछ खा पाता था, न कुछ पी ही रहा था। आखिरकार उसने मेचित से कहा—

"जाकर उस अड़ियल गधे को बुलाकर ला।...मैं उससे बात करना चाहता हूँ।"

जब बुखारबाइ तंबू-घर में प्रविष्ट हुआ, तब त्सात्सगाइ ने उससे कहा—

"तेरे अड़ियलपने के कारण मेरी तबीयत बिगड़ गई है।...तू महामूर्ख है, चार गधों से भी बढ़कर। मैं ठीक कह रहा हूँ। अगर इस समय मैं जवान होता तो मैंने तेरे इस आक-बोज़ात को चुरा लिया होता।...अरे ढीठ, मेरी बात सुन ले—जो तुझे चाहिए ले ले, ...मेचित को भी बदले में ले ले।"

"त्सात्सगाइ, आप मुझे बहुत सारा देकर मेरा सब कुछ ले लेना चाहते हैं।...मेरे इस आक-बोज़ात में इसेक-किर्गान का कुलीन खून बह रहा है। जब मैं बिल्कुल दरिद्र हालत में अपना गाँव छोड़ रहा था, तब मेरी माँ ने मुझसे कहा था कि मैं इस आक-बोज़ात को किसी भी कीमत पर ना छोड़ूँ। पर मैं जरा सोचूँगा।"

"चले जा, और जाकर सोच, बुद्धू!" बूढ़े त्सात्सगाइ ने वैसे ही कराहते हुए कहा।

जब बुख़ारबाइ तंबू से बाहर निकल रहा था उसकी मुलाकात मेचित से हुई। वह प्रवेश-द्वार के पास ही खड़ी हुई थी और उसने सारी बातें सुन ली थीं। वह बुरी तरह रोती हुई बोली—

"बुख़ारबाइ, तू मुझसे प्यार नहीं करता है।" अपने होंठों से फुसफुसाती हुई मेचित कह रही थी। यह वही मेचित थी जो अभी कुछ समय पहले तक उसके ऊपर खिलखिला कर हँसा करती थी।

बूढ़े त्सात्सगाइ के निवेदन और आश्वासन भी बुख़ारबाइ को उद्वेलित नहीं कर सके थे परंतु मेचित के आँसुओं ने उसे उद्वेलित कर ही दिया। वह अपने तंबू-घर में उन्मत्त हालत में लौटा। उसका सिर बुरी तरह चकरा रहा था। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करे।

बुख़ारबाइ अपने गड़रिये वाले फटे-फुटे और मैले तंबू में लेटा हुआ था और लेटे-लेटे सोच में डूबा हुआ था। उसे अपने सामने मेचित की रोनी सूरत दिखाई पड़ रही थी और उसका मीठा स्वर कानों में पड़ रहा था। वह अपनी दयनीय हालत को भी देख रहा था। तंबू के पास ही घूमते हुए अपनी सबसे बड़ी संपत्ति—आक-बोज़ात—की चहलकदमी को भी वह सुन रहा था। वह इसी उलझन में पड़ा हुआ था कि करे तो क्या करे। बाकी गड़रिये तो नींद में थे जबकि वह ऐसे परेशान हो रहा था जैसे कि वह कोई अपराधी हो। जवान दिन की हालत ऐसी ही चिंताओं से भरी होती है।... अंततः उसकी युवावस्था उस पर हावी हो ही गई और बुख़ारबाइ ने फैसला कर लिया कि वह आक-बोज़ात को बूढ़े त्सात्सगाइ को सौंप ही देगा।

अभी बुख़ारबाइ ने ऐसा फैसला मन में किया ही था कि आक-बोज़ात की हिनहिनाहट उसके कानों में पड़ी। वह अपने तंबू से बाहर आया ही था कि उसे बहुत जोर की टाप सुनाई पड़ी। ओह, यह तो

बुख़ारबाइ की सुपरिचित टाप थी।...रात को ही चोर वहाँ छिपकर आ बैठा था और अब वह हवा की तरह उड़ गया था। बुख़ारबाइ तेजी से घोड़ों के झुंड की ओर गया, वहाँ से उसने सबसे अच्छा घोड़ा लिया और तुरंत ही पीछा करने को निकल पड़ा। पीछा करते-करते एक घंटा हो गया, दो घंटे निकल गए और उसे फिर से पिरचित टाप सुनाई पड़ी। बुख़ारबाइ का दिल बुरी तरह धड़क उठा और उसने अपने घोड़े को और भी तेज दौड़ा दिया। जब उजाला होने लगा, तब उसे कुछ दूरी पर आक-बोज़ात दिखाई पड़ा। क्या यही उसका आक-बोज़ात है और क्या साधारण झुंड वाले घोड़े पर बैठकर वह उसका पीछा कर सकेगा? आज तक कोई भी तो आक-बोज़ात को हरा नहीं सका है। पीछा करते-करते बुख़ारबाइ को एक घंटा हो गया था—अब तो चोर बहुत पास ही था। चोर के पास तक पहुँचते ही बुख़ारबाइ के दिल में खून दौड़ गया। वहाँ खड़ा एक घुड़सवार अपने आपको रोक नहीं पाया और उसने जोर से चिल्लाकर कहा—

"अरे, शैतान, तुझे घोड़े पर बैठना तक नहीं आता है।...इसको गर्दन से उकसा।"

यह सुन कर चोर ने वैसा ही किया और तब आक-बोज़ात तीर की तरह दौड़ने लगा। शीघ्र ही वह दृष्टि से ओझल हो गया। बुख़ारबाइ ने अपने घोड़े को बहुत तेज दौड़ा दिया, वह जमीन पर गिर पड़ा और बुरी तरह रोने लगा। अल्लाह ने उसे इस बात का दंड दिया था कि वह ऐसे कुलीन घोड़े को बूढ़े त्सात्सगाइ को सौंप देना चाहता था। प्रेम ने उसे अंधा बना दिया था।

5

बुख़ारबाइ अपने गाँव तीन दिन बाद लौटकर आया। शुरू में तो किसी ने भी उसे पहचाना नहीं क्योंकि वह बहुत दुबला हो गया था और उसकी आँखें जंगली जैसी हो गई थीं।

बूढ़े त्सात्सगाइ ने उसे ताड़ना देते हुए कहा—

"अगर तूने आक-बोज़ात को मुझे सौंप दिया होता तो मैं उसकी रक्षा कर सकता था। बुख़ारबाइ, तू बहुत अड़ियल गधा है।...तू महामूर्ख है।"

बुख़ारबाइ बोला—

"मुझे अल्लाह ने सजा दी है।...त्सात्सगाइ, मुझे यहाँ से जाने दो।"

"तू कहाँ जाएगा, अरे अभागे कंगाल?"

"मैं आक-बोज़ात को ढूँढने जाऊँगा।...उसके बगैर मैं जिंदा नहीं रह सकता हूँ।"

पर मेचित तो कुछ और ही सोच रही थी। वह बुख़ारबाइ से बहुत प्यार करती थी, उसे दौलत नहीं चाहिए थी। वह खुद ही बुख़ारबाइ के पास आई और उससे बोली—

" बुख़ारबाइ, जिधर तू जाएगा, मैं भी उधर ही जाऊँगी।...मैं तुझसे प्यार करती हूँ।"

बुख़ारबाइ रोने लगा। मेचित ने उसका सिर अपने घुटनों पर रखा और उसे स्नेह भरे शब्दों से ढाढ़स देने लगी। अब जाकर उसे पता चला कि बुख़ारबाइ ऐसा कंगाल कैसे बना है। उसे उस पर और भी अधिक दया आ गई। मेचित की ही वजह से अल्लाह ने बुख़ारबाइ को दंड दिया था। हिम्मत करके मेचित अपने पिता के पास गई और कहा कि वह जिगीत बुख़ारबाइ को छोड़कर किसी और के साथ शादी नहीं करेगी क्योंकि वह कोई साधारण गड़रिया नहीं है, वह पक्का जिगीत है। मुझे धन-दौलत की चाह नहीं है। मुझे इसी गड़रिये की पत्नी बनना पसंद है।

त्सात्सगाइ को गुस्सा आ गया और उसने बेटी को बाहर कर दिया। पर वह फिर से आई और वही बात उसने एक बार और दोहराई। स्त्री-हठ के सामने कुछ किया जा सकता है क्या? त्सात्सगाइ का गुस्सा और भी अधिक बढ़ गया और उसने कहा—

"ठीक है, तेरी जिद्द ही सही।...ले जा अपने बुख़ारबाइ को। मैं कुछ नहीं जानता हूँ। मैं तुझे भी नहीं जानता हूँ।...इस अड़ियल गधे से कह देना कि अगर जिंदा रहना चाहता है तो अब कभी मुझे अपनी शकल ना दिखाए।"

बूढ़े त्सात्गाइ ने ऐसे बहुत सारे कड़वे शब्द मुँह से निकाले, जैसा कि बात न माननेवाली बेटियों के साथ बाकी पिता भी करते ही हैं। परंतु बाद में पिता का हृदय पिघल ही गया। त्सात्सगाइ ने मन में सोचा, 'मैं मेचित को एक तंबू-घर दे दूँगा। आखिर वह साधारण गड़रियों के साथ कैसे रह सकती है।...ऐसी हठीली लड़की इसके योग्य तो नहीं है पर ऐसा ही होने दो।'

तंबू-घर दे देने के बाद त्सात्सगाइ ने घोड़े भी दिए, फिर भेड़ें भी दीं, फिर और भी बहुत कुछ दिया। वह देते जा रहा था, पर बुख़ारबाइ को कोई फर्क नहीं पड़ रहा था। उसे तो कुछ भी नहीं चाहिए था।

उनका विवाह हो गया। पर बुख़ारबाइ अभी भी संताप में था। इतनी सुंदर पत्नी का स्नेह भी उसे सांत्वना न दे सका था। रात के समय बुख़ारबाइ अक्सर जाग जाया करता था और पागलों की तरह कूदने लगता था। उसे हमेशा आक-बोज़ात की टापों की आवाज ही सुनाई पड़ती रहती थी।...अब वह बहुत पास में ही है। वह देखो, स्तपी में ऐसे दौड़ रहा है, जैसे हवा से बातें कर रहा हो।... बुख़ारबाइ कूदकर तंबू में से बाहर आ जाता था, सबसे अच्छा घोड़ा लेकर आक-बोज़ात को ढूँढने निकल पड़ता था और फिर कुछ देर बाद बहुत ही उदास होकर घर वापस आ जाता था।

बुख़ारबाइ को न तो धन-दौलत अच्छी लग रही थी, न ही अपनी सुंदर पत्नी का स्नेह, न ही उसकी मुस्कुराहट और उसका गायन। इतने में एक और नई मुसीबत आ खड़ी हुई—गाँव में अपने वाद्य 'बंदूरा' को लेकर एक अंधा कंगाल आया और उसने आक-बोज़ात का गीत गाना शुरू कर दिया—

हवा से बहस करता था आक-बोज़ात,
पंख लिए थे चिड़िया से जिसने...
श्वेत सुंदरी, जैसा उड़ता था तू,
बत्तख के पंखों वाले तीर की तरह।

बुख़ारबाइ ने संतप्त होकर कहा—

"मेचित, यह गाना सुना? यह आक-बोज़ात के बारे में ही है। अर्थात् वह अभी जीवित है।...आह, मैं कैसा अभागा हूँ... मैं ऐसी संपदा की रक्षा नहीं कर सका।"

वह अंधा बैठकर गाए जा रहा था—

अच्छे घोड़े का मूल्य नहीं होता है,
वह पूरा जिगीत को समर्पित होता है।
घर, धन और मान से क्या होता है?
अगर घोड़ा नहीं है तो जिगीत भी नहीं है।

बुख़ारबाइ ने त्सात्सगाइ के पास आकर कहा—

"मैं जा रहा हूँ।"

"किधर?"

"पता नहीं किधर। अब और नहीं सहा जाता है।"

"पत्नी का क्या होगा?"

"पत्नी इंतजार कर लेगी।...मुझे कुछ नहीं चाहिए।"

बुख़ारबाइ स्तपी की यात्रा करने को निकल पड़ा—एक गाँव से दूसरे गाँव को, एक कुएँ से दूसरे कुएँ को। जहाँ कहीं झुंड में उसे कोई सफेद घोड़ा नजर आता, उसका दिल बैठने लगता। वह पास जाकर देखता—नहीं, यह तो आक-बोज़ात नहीं है। फिर से आगे चल देता, जैसे कि कोई उसे धकेल रहा हो।

रात को जब बुख़ारबाइ सोने के लिए लेटता तब उसे हर बार आक-बोज़ात की टाप सुनाई पड़ती। उसे सुनाई पड़ता था कि आक-

बोज़ात ने एक लंबा चक्कर काटा परंतु उसके पास नहीं आया।... बुख़ारबाइ के पूरे शरीर में कंपन दौड़ जाती और वह अल्लाह से दुआ माँगने लगता। दिन-पर-दिन आक-बोज़ात द्वारा लगाए जानेवाले चक्कर कम होते जा रहे थे। बुख़ारबाइ ने खाना-पीना ही बंद कर दिया था और वह सूखकर काँटा हो गया था।

"अब जल्दी ही..." उसने अपने आप से ही कहा।

इस बीच पूरी स्तपी में यह खबर फैल गई कि कोई पागल जिगीत घूमता हुआ सफेद रंग के किसी घोड़े को ढूँढ रहा है। माताएँ बच्चों को उसका नाम लेकर डराने लगीं और बड़े लोग रात के समय मिलने से डरने लगे। उसे एक ही बार में कई जगहों पर देखे जाने की खबरें भी उड़ने लगीं।

स्तपी के जिगीतों ने इकट्ठा होकर बुख़ारबाइ को पकड़ने की कोशिश भी की पर हर बार वह उनसे दूर चला जाता था।

अंततः बुख़ारबाइ बिलकुल कमजोर पड़ गया और पूरे तीन दिनों तक स्तपी के कुएँ के पास पड़ा रहा। उसमें इतनी भी शक्ति नहीं रह गई थी कि उठकर घोड़े पर बैठ सके। रात होते ही आक-बोज़ात फिर से प्रकट हो जाता और उसी तरह चक्कर काटने लगता। अब वह बहुत पास आ गया था। पर बुख़ारबाइ इस स्थिति में नहीं था कि आँखें खोलकर उसकी ओर देख सके। एक दिन—कुएँ के पास उसकी यह चौथी रात थी—बुख़ारबाइ मृतप्राय लेटा हुआ था। एकाएक टाप बिलकुल पास आ गई कि तभी...। बुख़ारबाइ ने आँखें खोलीं तो उसे अपने ऊपर आक-बोज़ात खड़ा हुआ दिखाई दिया। बुख़ारबाइ चिल्लाना चाहता था पर उसके मुँह से केवल कराह ही निकल सकी।

स्तपी के जिगीतों को बुख़ारबाइ कुएँ के पास मरा हुआ पड़ा मिला। उसने नमदे के अपने सफेद टोप को अकड़े हुए हाथों से कसकर पकड़कर छाती से लगा रखा था।

बूढ़ा गौरा

"लगता है कि मालिक कुछ करने की सोच रहा है।" अपनी चिकनी छाती को आगे करते हुए मुर्गे ने सबसे पहले ऐसा कहा।

"मुझे मालूम है—क्या करने की सोच रहा है।" भिंसा (विलो) की डाल पर बैठे बूढ़े गौरे ने चहचहाकर कहा। "अच्छा, अंदाज से बताओ कि क्या होगा मालिक के मन में, तुम तो बहुत अक्लमंद हो ना?... नहीं, रहने ही दो। तुम अंदाज नहीं लगा पाओगे।"

मुर्गे ने ऐसी शकल बनाई जैसे कि अपमानजनक शब्द उसे समझ ही न आए हों। इस ढीठ और डींगू गौरे के प्रति अपनी घृणा को व्यक्त करने के उद्देश्य से उसने अपने पंख जोर से फड़फड़ा दिए और गर्दन आगे को निकाल कर तथा चोंच पूरी-की-पूरी खोलकर कर्णभेदी स्वर में कुकड़ूँ-कूँ करने लगा।

"अरे मूर्ख, चीखू।" अपने नन्हे-से शरीर के साथ काँपता हुआ बूढ़ा गौरा हँसने लगा। "अब तो स्पष्ट हो ही गया है कि तू कुछ भी नहीं समझता है। चूँ-चूँ।"

शहर के छोर पर स्थित छोटे-से मकान का मालिक वास्तव में ही किसी असाधारण-से काम में व्यस्त था। सबसे पहले तो वह कमरे में से लोहे की छत वाला एक छोटा-सा डिब्बा बाहर लेकर आया। फिर कोठरी में से एक लंबा डंडा निकाला। उसके बाद डिब्बे को डंडे में कीलों से ठोकने लगा। एक पाँच साल का बच्चा सारे कामों को ध्यान से देखे जा रहा था।

"बहुत बढ़िया चीज बनेगी, सिर्योझा।" पिता ने आखिरी कील ठोकते हुए कहा, "असली महल बनेगा।..."

सिर्योझा ने पूछा—

"पापा, पर तिलोरे (स्यर्लिङ) कहाँ हैं?"

"तिलोरे तो अपने आप ही आ जाएँगे।..."

उनकी बातों को मुर्गा कान लगाकर सुन रहा था। उसने जोर की आवाज निकालकर कहा—

"अच्छा, तो यह तिलोरे का महल बन रहा है—तिलोरा-घर। मुझे तो मालूम ही था।"

बूढ़ा गौरा उस पर हँस दिया—

"अरे मूर्ख, यह घर तो मेरे लिए बन रहा है।... समझा? अरी बुढ़िया, देख जरा, हमारे लिए कैसा बढ़िया घर बनाया गया है।"

गौरैया अपने पति से कुछ अधिक गंभीर स्वभाव की थी और उसे इन शब्दों पर विश्वास नहीं हुआ। मालिक भी तो तिलोरे की बात कर रहा है अर्थात् यह तिलोरे का घर बन रहा है। आखिर, बूढ़े गौरे को बहस में कौन हरा सकता है?... वह तो अंत तक अपनी ही बात पर अड़ा रहेगा जबकि गोरैया बिल्कुल भी झगड़ना नहीं चाहती थी। झगड़ा क्यों किया जाए जबकि इस समय वसंत का सूरज कितना अच्छा खिला हुआ है? हर तरफ वसंत के चश्मे बह रहे हैं, भूर्ज वृक्षों पर आए अंकुर बड़े होकर लाल दिखाई देने लगे हैं जो कभी भी खिल कर हरे पत्तों का रूप धारण कर लेंगे और ये पत्ते कोमल, सुगंधित तथा वार्निश की तरह चमकदार दिखाई देने लगेंगे। अच्छा हुआ कि सर्दी का मौसम निकल गया है और अब सब लोग प्रसन्न दिखाई देने लगे हैं। निश्चय ही, बूढ़ा गौरा बहुत ही झगड़ालू है और बात-बात में

अपनी बुढ़िया को नाराज कर देता है। परंतु वसंत के इन सुहावने दिनों में तो पारिवारिक कलह तक भुला दिए जाते हैं।

बूढ़ा गौरा गौरैया के पीछे पड़कर बोला—

"अरी बुढ़िया, तू चुप क्यों है? क्या हमें छत के नीचे ही रहना है, अँधेरे में? हवा से भी बचाव नहीं है। कुल मिलाकर देखा जाए तो कोई आराम नहीं है। सच कहूँ तो मैं तो बहुत समय से मकान बदलने की सोच रहा था, पर फुरसत ही नहीं होती है। अच्छा हुआ कि मालिक को खुद ही आभास हो गया। ...मुर्गियों का अपना मुर्गीखाना है, घोड़ों की अपनी घुड़साल है, कुत्तों के लिए भी कुत्ता-घर बना हुआ है। अकेले मुझे ही इधर-उधर भटकना पड़ता है। मालिक को खुद ही शर्म आ गई होगी और उसने मेरे लिए घर बना दिया है।... अब हम मजे से रहेंगे, अरी बुढ़िया।"

सारे अहाते में खूब चहल-पहल हो रही थी। घुड़साल में से घोड़े का सिर बाहर को निकला हुआ था, कुत्ताघर में से झबरीला कुत्ता



वोल्चोक बाहर निकलकर आया, भूरा बिल्ला वास्का भी प्रकट हो गया था जो वैसे सारा दिन कहीं धूप में पड़ा रहता था। सब प्रतीक्षा में थे कि आगे क्या होनेवाला है।

अपने सबसे बड़े शत्रु वास्का बिल्ले को देखकर बूढ़ा गौरा चिल्लाया—

"अरे दुष्ट, तू यहाँ क्यों आ गया है? अरे भाई, तू अब मुझे पकड़ नहीं पाएगा।... हाँ, अब अपने चूहों को जाकर पकड़ना और यहाँ मुझे अपने नए घर में रहते हुए देखना। अब तो पाले के दिनों में मुझे एक पाँव पर कूदना नहीं पड़ेगा और न ही तुझे चूल्हे के ऊपर लेटने की जरूरत पड़ेगी।..."

"ठीक ही तो है।..." मुर्गा भी उसकी बात से सहमत था। वास्का बिल्ले को वह भी पसंद नहीं करता था। "मान लें कि बूढ़ा गौरा डींग हाँकता है, झगड़ालू भी है और चोरी भी करता है, पर वह चूजों को तो उठाकर नहीं ले जाता है।"

अपना काम पूरा करके मालिक ने तिलोरे के घर वाले डंडे को ले जाकर बाड़ के सबसे मजबूत खंभे के साथ बाँध दिया। तिलोरे का घर बहुत बढ़िया बना था—उसके फट्टे बिल्कुल सटा कर लगाए गए थे, ऊपर लोहे की छत बनाई गई थी और एक तरफ भूर्ज की सूखी टहनी लगाई गई थी जिस पर बड़े आराम से बैठा जा सकता था। अंदर जाने के लिए बनाई गई छोटी-सी गोल खिड़की के पास एक छोटा-सा फट्टा भी था—उस पर बैठकर भी आराम किया जा सकता था।

बूढ़े गौरे ने चिल्लाकर कहा—

"जल्दी कर, बुढ़िया। तैयार हो जा, दूसरों के मकान पर कब्जा करने को यहाँ बहुत-से दुष्ट बैठे हुए हैं।...अभी देखना, तिलोरे आ जाएँगे।"

गौरैया बोली—



"अगर हमें बाहर निकाल दिया तो? हमारा अपना पुराना घोंसला भी जाता रहेगा, कोई और वहाँ आकर बैठ जाएगा। तब हमारे पास कुछ भी नहीं रह जाएगा।...मालिक भी तो तेलियरों का ही नाम ले रहा था।"

"अरी मूर्ख, वह तो मजाक में ऐसा कह रहा था।"

जैसे ही मालिक अपने बनाए तिलोरा-घर को जरा दूर से देखने के लिए पीछे को हटा, तभी बूढ़ा गौरा लोहे की छत पर जाकर बैठ गया। फिर जोर से चहचहाकर वह खिड़की के रास्ते अंदर घुस गया। उसकी पूँछ की एक झलक दिखाई दी थी। वहाँ पर बिछे हुए सन पर बैठ कर उसे इतना आनंद आया कि अपने आप ही जोर से बोल पड़ा—

"अरे, यहाँ तो बहुत ही बढ़िया है! मेरी बुढ़िया को तो यहाँ अच्छी गर्मी मिल जाएगी। और हमारे बच्चों को भी।...कहीं से भी ठंडी हवा नहीं आ रही है, न बारिश से गीला होने का डर है, और सबसे अच्छी बात तो यह है कि मालिक ने अपने हाथों से इसे मेरे लिए बनाया है। बुरा नहीं बना है।...अब तो ठंड के मारे यहाँ अकड़कर मरने का डर भी नहीं रहा।"

उस तिलोरा-घर के सबसे ऊपरी भाग पर पहुँचकर बूढ़े गौरे ने मारे खुशी के अपने सारे पंख फैला दिए और चारों तरफ घूमकर वह जोर से चिल्लाया—

"अरे भाई लोगो, मैं यहाँ हूँ, आप सबका स्वागत है गृह-प्रवेश पर!"

नीचे से मालिक डाँटते हुए चिल्लाया—

"अरे, डकैत, तू यहाँ पहले ही आ गया। जरा ठहर तो सही, अभी तिलोरे आकर तुझे मजा चखाएँगे।"

नन्हे सिर्योझा को बहुत ही बुरा लगा कि इस तिलोरा-घर में गौरा जैसा सबसे साधारण पक्षी आकर बैठ गया था। सिर्योझा के पिता ने उसे समझाते हुए कहा—

"तू हर रोज सवेरे के समय देखते रहना। कुछ ही दिनों में हमारे तिलोरे यहाँ जरूर आएँगे।"

यह सुनकर बूढ़ा गौरा ऊपर से चिल्लाया—

"मालिक ने भी अच्छा मजाक किया है, मुझे बहकाना आसान नहीं है।...तेलियरों से तो हम खुद ही निपट लेंगे।"

2

बूढ़ा गौरा तिलोरा-घर में आराम से रहने लगा, जैसा कि घरेलू चिड़िया को करना भी चाहिए। पुरानेवाले घोंसले से पत्ते-पंख वगैरह जो भी ला सकता था, वह ले आया।

"अब हमारे उस घोंसले में हमारे भतीजे रह सकते हैं।" बूढ़े गौरे ने अपनी स्वाभाविक उदारता का प्रदर्शन करते हुए कहा। "मैं तो अपने रिश्तेदारों को अपना सब कुछ देने को तैयार हूँ।...वहाँ आराम से रहें और मुझ बूढ़े की भलाई को याद करते रहें।"

बाकी चिड़ियाँ उसकी बात पर हँस दीं—

"बहुत उदार बनता है, भतीजों को घोंसला क्या, एक बिल ही तो

दिया है।... देखते हैं, जब इसे ही तेलियरों के घर से निकाल बाहर किया जाएगा तब कहाँ जाकर रहेगा?''

ये सारी बातें ईर्ष्या के मारे कही जा रही थीं जिन्हें सुनकर बूढ़े गौरे को तो हँसी ही आ रही थी—बकने दो। वह तो बड़ा अनुभवी, बूढ़ा गौरा था जिसने घाट-घाट का पानी पी रखा था।...अपने गर्म घोंसले में बैठकर अब वह अपने जीवन की तरह-तरह की असफलताओं को याद करते हुए आनंदमग्न हो रहा था। एक बार तो वह गर्मी पाने के लिए एक पाइप में घुस गया था और जलते-जलते बच गया था। एक बार डूबते-डूबते रह गया था। फिर एक बार मारे ठंड के अकड़ गया था। एक बार दुष्ट बिल्ले वास्का के मखमली पंजों में फँसने ही वाला था और बड़ी मुश्किल से जिंदा निकल पाया था। ऐसी बहुत-सी मुसीबतें और कष्ट झेलने पड़े थे उसे।

अपने नए घर की छत पर चढ़ कर गौरे ने ऊँचे स्वर में अपने आप से कहा—

''अब आराम करने का समय हो गया है। मैं ही असली सम्मान का हकदार गौरा हूँ।...जवान गौरे-गौरैयों को तो अभी सीखना है कि दुनिया में रहा कैसे जाता है।''

हास्यास्पद होने के बावजूद बूढ़े गौरे की ऐसी ढिठाई की सभी पक्षियों को आदत पड़ चुकी थी और वे विश्वास तक करने लगे थे कि तिलोरे के लिए बनाया गया घर वास्तव में बूढ़े गौरे के लिए ही है। अब सबको उस निर्णायक दिन की प्रतीक्षा थी जब तिलोरे यहाँ आएँगे—तब दूसरे के घोंसले में घुस आया यह बूढ़ा गौरा क्या करेगा?

बूढ़ा गौरा तर्क कर रहा था—

''तिलोरा क्या होता है? बड़ा मूर्ख पक्षी है जो, पता नहीं क्यों, एक जगह से दूसरी जगह को प्रवास रहता है? ये हमारा मुर्गा भी मूर्ख ही तो है पर घर में बैठा तो रहता है। बाद में इसका सूप बनाया जाता

है।... मैं तो यह कहना चाहता हूँ कि मूर्ख मुर्गा कम-से-कम सूप के काम तो आता है। पर तिलोरे तो किसी काम के नहीं हैं। पगले-से उड़े आते हैं, चक्कर काटते हैं और ले-देकर शोर मचाने लगते हैं।... छिः, देखने में तक अच्छे नहीं लगते हैं!''

''तिलोरे तो बहुत अच्छा गाते-चहचहाते हैं।...'' वोल्चोक कुत्ते ने कहा जो गौरे की बेतुकी बातें सुनते-सुनते तंग आ गया था। उसने आगे कहा, ''तू तो सिर्फ चोरी करना ही जानता है।''

''क्या कहा—गाते और चहचहाते हैं? इसे भला गाना कहते हैं?'' बूढ़े गौरे ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा, ''हा-हा-हा,... मुझे माफ करो, भाई लोगो, अपनी तारीफ करना अच्छा तो नहीं होता है पर मैं इतना जरूर कहना चाहता हूँ कि अगर कोई वास्तव में गाता है तो वह मैं ही हूँ।... हाँ, मैं हमेशा गाया करता हूँ, सवेरे से शाम तक, जीवन भर गाता रहता हूँ।... मेरा गाना सुनो—चीं-चीं-चीं, चूँ-चूँ-चूँ, अच्छा है ना? सच?...सभी तो मेरा गाना सुनते हैं।''

''जरूर सुनते होंगे, तेरे जैसे मूर्ख को।''

तिलोरे का वह घर बहुत बढ़िया बना था। असली बात तो यह थी कि ऊपर की तरफ से सब कुछ दिखाई देता था। जब मुर्गियों के लिए चारा डाला जाता तब सबसे पहले पहुँचने वाला बूढ़ा गौरा होता था। खुद तो पेट भर खाता ही था, अपनी गौरैया के लिए भी ले जाता था। जब तक वोल्चोक कुत्ता अपने घर से निकलकर बाहर आता, वह उसका भी कुछ हिस्सा चुरा लेता था। सभी जगह वह ऐसा करता था। चाहे मुर्गियों के पाँवों के पास कोई चारा डाला गया हो, चाहे घोड़े की नाँद की बात हो, और कमरों में तो वह घुसता ही था। बूढ़े गौरे के लालचपने और दुष्टता का कोई अंत ही नहीं था। इतना कम है कहने को, वह तो दूसरों के आँगन में भी पहुँच जाता था और वहाँ से भी खाने की कोई-न-कोई चीज उठा लाता था। कहीं भी पहुँच जाएगा, हर जगह उसका कोई काम होता था और किसी से डरता भी नहीं था।

मार्च का महीना शुरू हो गया था। मौसम में गर्मी आ गई थी, धूप भी निकली रहती थी। सब जगह बर्फ काली पड़ गई थी, बैठ गई थी, पिघलने लगी थी और ऐसी भुरभुरी हो गई थी जैसे कि उसे कीड़े खा गए हों। भूर्ज की टहनियों में लालिमा आ गई थी जो अपने रस से भरने लगी थीं। वसंत पूरे उभार पर आता जा रहा था। कभी-कभी ऐसी सुहावनी हवा चलने लगती थी कि बूढ़े गौरे का भी दिल धड़कने लगता था। बहुत ही बढ़िया समय था यह।

सवेरे नींद खुलते ही सिर्योझा खिड़की के पास जाकर देखने लगा कि तिलोरे आए हैं कि नहीं। परंतु दिन बीतते जा रहे थे और तिलोरे अभी तक नहीं आए थे।

सिर्योझा ने अपने पिता से शिकायत करते हुए कहा—

''पापा, तिलोरों के घर में अभी तक वही गौरा बैठा हुआ है।''

''जरा रुक जा। जल्दी ही मजा चखेगा। कल काले कौए तो उड़कर आ ही गए हैं। अर्थात् अब तिलोरे भी आने ही वाले होंगे।''



वास्तव में ही साथवाले शाही बाग में काले-काले धब्बे भर गए थे जैसे कि कोई जीता-जागता जाल फैला हो— ये वसंत के पहले मेहमान थे जो दूर दक्षिण के गर्म प्रदेश से आए थे। उन्होंने ऐसा शोर मचा रखा था जो कई गलियों तक सुनाई पड़ता था—जैसे कि हाट लगी हुई हो। उड़-उड़ कर चक्कर काटते और शोर मचाते हुए अपने पुराने घोंसलों को जा-जाकर देख रहे थे। उनका शोर तो बंद ही नहीं होता था।

शाम के समय ही बूढ़े गौरे ने अपनी गौरैया को फुसफुसाकर आगाह कर दिया था—

''ओ बुढ़िया, तू अपनी जगह टिकी रहना, सवेरे बहुत सारे तिलोरे उड़कर आएँगे।...मैं उन्हें मजा चखा दूँगा, देखना, मैं तो किसी को तंग नहीं करता हूँ, इसलिए मुझे भी तंग मत करो। अपने काम से काम रखो।''

सारी रात बूढ़ा गौरा सोया नहीं। वह रात भर पहरा करता रहा। पर विशेष कुछ भी घटित नहीं हुआ। सवेरा होने से पहले हरी तूतियों का एक छोटा-सा झुंड उड़कर आया। बड़ी शांत चिड़ियाँ थीं—भूर्ज के वृक्षों पर बैठकर थोड़ा देर आराम किया और फिर आगे उड़ गईं। उन्हें जंगल की तरफ जाने की जल्दी थी। उनके बाद आए खंजन पक्षी। ये तो और भी शांत चिड़ियाँ थीं। रास्ते पर ही चलती थीं, अपनी दुम हिलाती जाती थीं तथा किसी से कोई मतलब नहीं रखती थीं। तूती और खंजन—दोनों ही जंगल के पक्षी थे जिन्हें देखकर बूढ़े गौरे को अच्छा ही लगा।... पिछले साल के परिचित आपस में मिल गए थे।

''बहुत दूर उड़ कर गए थे क्या?''

''ओह, बहुत ही दूर।...जाड़ों में यहाँ कितनी ठंड थी?

''ओफ, बहुत ही ठंड थी।...''

''अच्छा, गौरे भाई, हम चलते हैं, हमारे पास समय नहीं है।''

सवेरे काफी ठंड थी। पर तिलोरे के घर के अंदर गर्म था और इसलिए गौरैया बड़ी देर तक मीठी नींद सोती रही।

बूढ़ा गौरा जरा-सा लेटा ही था—शायद अभी उसकी आँखें भी बंद नहीं हुई थीं कि तिलोरों का पहला झुंड वहाँ आ पहुँचा। तिलोरे इतनी तेजी से उड़ रहे थे कि हवा में भी सनसनाहट होने लगी थी। उन्होंने तिलोरा-घर को चारों ओर से घेर लिया और ऐसा शोर मचा डाला कि बूढ़ा गौरा घबरा ही गया।

तिलोरा-घर की खिड़की से अपनी चोंच अंदर को डालते हुए एक तिलोरे ने चिल्लाकर कहा—

"चल, बाहर निकल, फटाफट, जल्दी कर।"

बूढ़ा गौरा बोला—

"तू कौन है रे?... इसका मालिक मैं हूँ।...आगे बढ़ जा, मुझे मजाक-वजाक पसंद नहीं है।"

"तुझमें इतना बोलने की हिम्मत कहाँ से आ गई? दुष्ट कहीं के!"

इसके आगे जो कुछ हुआ, उसका वर्णन करना बहुत भयानक है। तिलोरों का एक जासूस तिलोरा-घर में घुस ही गया और उसने सुए जैसी अपनी लंबी चोंच से गौरैया को गर्दन से पकड़कर सीधे खिड़की से बाहर फेंक दिया।

"अरे भाई लोगो, खतरा आ गया है।" बूढ़ा गौरा बहुत जोर से चीखा। अपने आपको बचाता हुआ वह एक कोने में जाकर दुबक गया था। वह चिल्लाए जा रहा था, "अरे, भाइयो लूट मच गई है।...खतरा आ गया है।... अरे, भाइयो, मार डाला।"

बूढ़ गौरा बहुत देर तक अड़ा रहा, धक्का-मुक्की भी की, बहुत चिल्लाया भी परंतु अंततः उसे तिलोरा-घर से अपमानपूर्वक निकाल बाहर कर दिया गया।

3

यह बड़ी भयानक सुबह थी। शुरू-शुरू में तो बूढ़े गौरे को ठीक से समझ में ही नहीं आया कि यह सब हुआ कैसे।...नहीं, चाहे कुछ भी कहो, यह तो बहुत ही उत्तेजित करनेवाली बात थी। इसको लेकर भी समझौता तो किया जा सकता था। दूसरे के तिलोरा-घर में घुस आया है तो बाहर निकलने को कह दिया होता। बस, मामला खतम। अगर बूढ़े गौरे की भी तिलोरे की तरह सूए जैसी चोंच होती तो वह किसी को भी बाहर निकाल देता। मुख्य बात तो शर्म की है।... हाँ, कैसी बुरी बात है कि इतनी डींग मारने और चीखने-चिल्लाने के बाद ऐसा परिणाम निकला। बड़े शर्म की बात है।

तभी अहाते में खड़े मुर्गे ने उसकी ओर चिल्लाकर कहा—

"तूने तिलोरों को डरा तो दिया ही था। वैसे मेरा तो सूप ही बनेगा, पर मेरा अपना दड़बा तो है। तू तो एक टाँग पर फुदकता रहेगा।...बस, बकबक ही करता रहेगा। जो हुआ सो ठीक ही हुआ..."

बूढ़ गौरा गुस्से में आ गया—

"तुझे किस बात की खुशी है? ठहर तो सही, मैं तेरी ऐसी की तैसी करता हूँ।...तिलोरा-घर मैंने खुद ही खाली किया है। मेरे लिए वह बड़ा था और छेदों में से हवा भी आती थी।"

बेचारी गौरैया तो बड़ी दयनीय और पस्त हालत में छत पर बैठी हुई थी जिसे देखकर बूढ़े गौरे का पारा और भी चढ़ गया। वह उड़कर उसके पास आया और उसके सिर पर चोंच मारी—

"तू ऐसे क्यों बैठी है? मेरी बदनामी हो रही है।...अपने पुराने घोंसले में चलते हैं। कहानी खतम। इस तिलोरे से तो मैं बदला लूँगा ही।"

परंतु उस घोंसले में रहने को आए भतीजे घोंसला खाली करना ही नहीं चाहते थे। उन्होंने शोर मचा-मचा कर अपने दादा को निकाल

बाहर किया। यह तो तिलोरों से भी बुरी बात हुई। अपने ही रिश्तेदारों ने ऐसा बुरा व्यवहार किया! क्या उसने कुछ भी नहीं किया था उनके लिए? नेकी कर, कुएँ में डाल।... गौरैया को बेवजह सता दिया। अपना घोंसला हाथ से निकल गया। अब सपरिवार छत पर रहना पड़ रहा है। अब तो बाज आकर हमारे चीथड़े-चीथड़े कर डालेगा। बूढ़ा गौरा बहुत उदास हो गया था। आराम करने को वह छत की मँगरी (चोटी) पर जाकर बैठ गया। उसने एक गहरी साँस ली। ओफ़, किसी गंभीर चिड़िया के लिए इस दुनिया में जीना कितना मुश्किल है।

गौरैया ने दयनीय स्वर में पूछा—

"अब हम कैसे रहेंगे? सबके पास अपने-अपने घोंसले हैं।...जल्दी ही सबके बच्चे होंगे। हम तो, लगता है, छत पर ही पड़े रह जाएँगे।"

"बुढ़िया, जरा रुक जा। हम भी कोई ठिकाना ढूँढ लेंगे।"

इससे भी बड़ा अपमान तो अभी आगे आनेवाला था। नन्हा सिर्योझा दौड़ कर बाहर अहाते में आया, तिलोरों को देखकर उसने मारे खुशी के ताली बजाई और जी भरकर उन्हें देखता रहा। उसके पिता को भी तिलोरों को देखने में वैसा ही आनंद आ रहा था। उन्होंने कहा—

"देख, कैसे सुंदर दिखाई दे रहे हैं, बिल्कुल रेशम जैसे हैं। कैसी मधुर है इनकी चहचहाहट!... क्या ही बढ़िया पक्षी हैं!"

"पिता जी, वह गौरा कहाँ गया जो तिलोरा-घर में रह रहा था? वो देखो, उधर छत पर बैठा हुआ है।... ओह, अभी कितनी बुरी तरह से चीखा था।"

पिता ने कहा—

"यह तो हमेशा ही उखड़ा-उखड़ा-सा रहता है।...क्यों, भाई, अच्छा नहीं लग रहा है क्या?" गौरे को संबोधित करते हुए पिता ने जोर से हँस कर कहा, "आगे के लिए यह सीख ले लो—बिना बुलाए मेहमान मत बनो। वह तिलोरा-घर तुम्हारे लिए नहीं बनाया गया था।"

अब तो मुर्गियाँ तक बेचारे बूढ़े गौरे पर हँस रही थीं। उसकी हरकतें ही ऐसी थीं।...मारे दुख के वह रो तक दिया था। पर कुछ देर बाद सँभल गया और प्रसन्न भी दिखाई देने लगा।

गौरे ने गर्व के साथ सारे पक्षियों से पूछा—

"तुम किस बात पर हँस रहे हो? बताओ, क्यों हँस रहे हो?...यह ठीक है कि मुझसे गलती हुई। फिर भी मैं तुम सबसे अधिक समझदार हूँ।...और मुख्य बात तो यह है कि मैं मुक्त पक्षी हूँ, हाँ।...मैं ईश्वर की इच्छानुसार जीता हूँ। इसके लिए मैं कोई कसम तो खाऊँगा नहीं। तुम्हारी क्या हालत हो जाए अगर तुम्हारे मालिक तुम्हें चारा देना और खाना खिलाना छोड़ दें? वोल्चोक, तू तो भूखा ही मर जाएगा मूर्ख मुर्गे, तेरी भी ऐसी ही गत हो जाएगी। ओ, घोड़े और गाय, तुम्हारी भी। मैं तो अपना दाना खुद ही ढूँढ लेता हूँ। समझे?...ऐसा हूँ मैं।...मैं अपनी किस्मत सुधार लूँगा। बस, थोड़ा समय चाहिए।...तुम्हारे अहातों से मैं जिन दानों को चुनता हूँ वो भी मेरी ही कमाई के हैं। मच्छरों को कौन खाता है? कीड़ों को खोद-खोद कर कौन निकालता है? इल्लियों को और तरह-तरह के और भी बहुत-से कीड़ों को कौन ढूँढ निकालता है? ये सारे काम मैं ही तो करता हूँ।"

तिलोरों की तरफ आँख मारकर मुर्गा बोला—

"हमें मालूम है कि तू कीड़ों को कैसे ढूँढता है। बगीचों में क्यारियाँ खोदी जाती हैं, उनमें चना और दाल बोई जाती है। तब गौरैयाँ भी आ पहुँचती हैं। सब कुछ उजाड़ देती हैं, चना और दाल चट कर जाती हैं। चोरी ही तेरा जीवन है। चोर है तू, मान जा।"

बूढ़ा गौरा आग-बबूला हो गया—

"चोरी? और मैं? मैं मनुष्य का सबसे पहला मित्र हूँ।...हम हमेशा साथ रहते हैं, जैसा कि मित्रों को करना भी चाहिए। जहाँ मनुष्य होगा, वहाँ गौरैया भी रहेगी, हाँ।...मैं तो बिल्कुल निस्स्वार्थ मित्र

हूँ।...मेरे मालिक ने मुझे कभी एक दाना अनाज का दिया भी है क्या?...मुझे चाहिए भी नहीं।...निश्चय ही, उस समय बुरा लगता है जब कोई भी पक्षी उड़ कर आ जाते हैं और उन्हें सब तरह का सम्मान दिया जाने लगता है। यह तो सरासर अन्याय है।...पर तुम इतनी-सी बात भी समझते नहीं हो क्योंकि तुम में से कुछ तो जीवन भर जैसे कि जुए में बँधे रहते हो, कुछ जंजीर में बँधे रहते हो, कुछ अपने-अपने दड़बों में बैठे रहते हो।... मैं तो मुक्त पंछी हूँ और यहाँ पर भी अपनी इच्छा से ही रह रहा हूँ।''

बूढ़ा गौरा बहुत देर तक बोलता रहा। उसे अपने मित्र—मनुष्य—की धोखेबाजी पर बहुत गुस्सा आ रहा था। फिर वह एकाएक गायब हो गया।...बूढ़ा गौरा दिखाई नहीं दिया—एक दिन हो गया, दो दिन हो गए, तीन दिन हो गए।

मुर्गे ने कहा—

''शायद वह दुखी होकर मर गया होगा। देखा जाए तो सबसे बकवास पक्षी है।''

पूरा एक हफ्ता गुजर गया। एक दिन सवेरे बूढ़ा गौरा फिर से छत पर दिखाई दिया। बहुत उल्लसित और प्रसन्न दिखाई दे रहा था।

वह चहचहाकर गर्व के साथ बोला—

''भाई लोगो, मैं आ गया हूँ। आप कैसे हैं?''

''अरे, बुड्ढे, तू अभी भी जिंदा है?''

''ईश्वर की कृपा से अब मैं नए घर में बस गया हूँ। बहुत बढ़िया है।... ये वाला घर मालिक ने ही मेरे लिए तैयार किया है।''

''कहीं फिर से झूठ तो नहीं बोल रहा है?''

''हूँ, अगर चाहो तो तुम्हें ले जाकर दिखा देता हूँ। नहीं, मखौल की बात नहीं है, अब की बार मुझे धोखा नहीं दिया जा सकता है।... अच्छा, चलता हूँ।''

बूढ़ा गौरा झूठ नहीं बोल रहा था। वास्तव में ही उसे रहने को जगह मिल गई थी। बगीचे की एक क्यारी में पुराना बिजूखा खड़ा हुआ था। उसकी टहनी पर कुछ धागे लटके हुए थे और ऊपर से एक पुराना टोप डाल दिया गया था। उसी में बूढ़े गौरे ने अपना घोंसला बना लिया था। यहाँ उसे कोई तंग नहीं करेगा। किसी पक्षी को पता भी नहीं चल सकेगा और भयानक बिजूखे से डरकर भी रहेंगे। परंतु इस प्रयास का भी दुखद अंत हुआ। गौरैया टोप में अपने बच्चों को से रही थी, इतने में बहुत तेज हवा चली जो टोप को घोंसले समेत उड़ा ले गई। उस समय गौरा अपने काम से बाहर गया हुआ था। जब वह लौटकर आया तब उसने वहाँ मरे हुए छोटे बच्चों और विलाप करती हुई गौरैया को देखा। वह कुछ ही समय तक अपने बच्चों के चले जाने के दुख को झेल पाई। उसने खाना-पीना छोड़ दिया, दुबली होती जा रही थी, उसके पंख खड़े होने लगे थे और दिन भर बिना हिले-डुले वह एक ही डाल पर बैठी रहती थी। इस तरह दुख की मारी वह स्वर्ग सिधार गई।...बूढ़ा गौरा उसकी याद कर-करके बहुत दुखी रहता था, छटपटाता रहता था और आँसू बहाए जाता था।

अब शरद ऋतु समाप्त होने को थी। सारे प्रवासी पक्षी दक्षिण को चले गए थे जहाँ पर मौसम गर्म रहता है। बूढ़ा गौरा खाली हुए तिलोरा-घर में अकेला रहने लगा। उसकी हालत बहुत बुरी होती जा रही थी और उसने चहचहाना लगभग बंद ही कर दिया था। पहला हिमपात होने पर जब सिर्योझा स्लेज में बैठकर बाहर अहाते में आया तो चौंधियाती हुई सफेद बर्फ में उसे सबसे पहले जो चीज दिखाई दी वह था बूढ़े गौरे का छोटा-सा शव। बेचारा ठंड से अकड़ कर मर गया था।

गहरे सोच में डूबे हुए मुर्गे ने भर्राए स्वर में कहा—

''गौरे पर बड़ी दया आ रही है। लगता है कि किसी चीज की कमी हो गई है।...हमेशा चहचहाता रहता था, इधर-उधर उड़ता रहता था, सबके पास जाता था। बूढ़े गौरे के बिना हमारा अहाता सूना हो गया है।''

विशेष शब्द

(कोष्ठक में उस कहानी का नाम दिया गया है जहाँ कोई विशेष शब्द आया है)

आक-बोज़ात : सितारा (आक-बोज़ात)।

इसेक-किर्गान : सान्ध्य-ज्योति (आक-बोज़ात)

किर्गीज़ : मध्य एशिया के देश किर्गीज़स्तान से संबंधित या वहाँ का निवासी।

चूल्हा : रूस के गाँवों और पुराने घरों में बहुत बड़े चूल्हे बनाए जाते थे जिनके ऊपर कड़ाके की सर्दी के महीनों में सोने की भी व्यवस्था होती थी (भूरी शेइका, बूढ़ा गौरा)

जिगीत : किर्गीज़ घुड़सवार (आक-बोज़ात)।

बंदूरा : एक प्रकार का तार-वाद्य (आक-बोज़ात)।

बी : किर्गीज़ गाँव का मुखिया (आक-बोज़ात)।

स्तपी : दूर-दूर तक फैले घास के मैदान, बुग्याल (आक-बोज़ात)।

रूसी भाषा से अनूदित 'पशु-प्रेम की कहानियाँ' नामक यह पुस्तक किशोर पाठकों के लिए है। इन कहानियों के रचनाकार हैं उन्नीसवीं शताब्दी के रूसी लेखक द.न. मामिन-सिबिर्याक। कहानियों का अनुवाद रूसी से किया गया है। प्रस्तुत संकलन में उनकी छह कहानियाँ सम्मिलित हैं। इन कहानियों के पात्र विभिन्न पशु-पक्षी हैं। 'शिकारी येमेल्या' कहानी में शिकारी का हृदय-परिवर्तन होता दिखाया गया है। इसके मुख्य पात्र हैं-मृग-शावक, हिरनी और तीतर। 'पोस्तोइको' कहानी उन कुत्तों के बारे में है जिन्हें कमेटीवाले पकड़कर ले जाते हैं। इस कहानी में कुत्तों के आपसी व्यवहार को दिखाया गया है। इस कहानी से हमें यह पता चलता है कि मानव-सुलभ असमानता तथा ईर्ष्या जैसे अवगुण पशुओं के जीवन में भी देखे जा सकते हैं। 'प्रियौमिश' नामक कहानी में बूढ़े शिकारी तरास का हंस के प्रति प्रेम प्रदर्शित किया गया है जो किसी शिकारी की गोली से तो बच निकला था परंतु उसकी हंसिनी मारी गई थी। 'भूरी शेइका' नामक कहानी में भी पंखकटी नीलसर चिड़िया के प्रति शिकारी के दया-भाव को दिखाया गया है। 'आक-बोज़ात' नामक कहानी के मुख्य पात्र हैं घोड़ा और उसका मालिक। इसमें भी मनुष्य और पशु के पारस्परिक प्रेम को दिखाया गया है। 'बूढ़ा गौरा' नामक कहानी में यह पढ़ने को मिलेगा कि पालतू पक्षियों तथा गौरा और गौरैया जैसे घरेलू पक्षियों में क्या अंतर होता है।

मनुष्य और पशुओं के बीच कैसा संबंध होना चाहिए-यह हमें इन कहानियों को पढ़कर पता चलता है। द.न. मामिन-सिबिर्याक की ये रूसी कहानियाँ हमारे किशोरों को निश्चय ही पसंद आएँगी और पशु-पक्षियों के प्रति उनकी रुचि बढ़ाने में सहायक सिद्ध होंगी।

द.न. मामिन-सिबिर्याक : इस पुस्तक के रचनाकार दमीत्री नारकीसेविच मामिन-सिबिर्याक (1852-1912) हैं। द.न. मामिन-सिबिर्याक का जन्म 6 नवंबर, 1852 को रूस के पेर्म प्रांत के एक पुरोहित परिवार में हुआ था। चार वर्ष तक आपने पुरोहिती की शिक्षा प्राप्त की। इसके बाद सेंट पीटर्सबर्ग जाकर आपने पहले पशु-चिकित्सा का और फिर कानून का अध्ययन किया। परंतु विभिन्न कारणों से उनकी शिक्षा अधूरी रह गई। उसके बाद आप यूराल क्षेत्र में वापस आ गए। उन्होंने यूराल की खानों और मजदूरों के बारे में लिखना शुरू किया। इस विषय पर उन्होंने कई उपन्यास लिखे हैं। उन्हें हम 'यूराल का गोर्की' भी कह सकते हैं, यद्यपि वह गोर्की के पूर्ववर्ती थे। इसीलिए तो गोर्की ने उन्हें अपना शिक्षक माना है। गोर्की उन्हें अपना मित्र समान भी मानते थे। 1891 ई. तक यूराल में रहने के बाद द.न. मामिन-सिबिर्याक सेंट पीटर्सबर्ग चले गए। वहीं 15 नवंबर, 1912 को उनका देहांत हुआ।

द.न. मामिन-सिबिर्याक के लेखन में उनके बाल-साहित्य का स्थान विशिष्ट है। किशोरों के लिए लिखी गईं उनकी कहानियाँ हमेशा से ही बहुत लोकप्रिय रही हैं। उनकी अधिकांश कहानियों में पशुओं के जीवन का सजीव चित्रण है जो इस पुस्तक में भी पढ़ने को मिलेगा।

सस्ता साहित्य मण्डल

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

एन-77, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 23310505, 41523565
Visit us at : www.sastasahityamandal.org
E-mail : manager@sastasahityamandal.org